कुलदेवियां

रतन सिंह शेखावत

कुलदेवियां

रतन सिंह शेखावत

श्री क्षत्रिय वीर ज्योति मिशन, दिल्ली

समर्पण
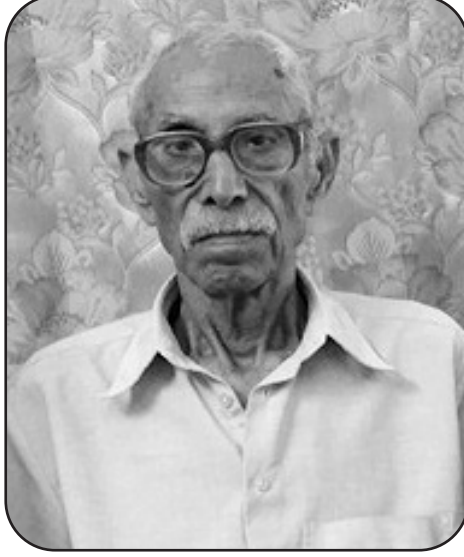
(ठा. सा. श्री सौभाग्यसिंह जी शेखावत, भगतपुरा)

राजस्थानी भाषा, साहित्य, संस्कृति और इतिहास शोध पर अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित करने वाले राजस्थान के मूर्धन्य साहित्यकार, इतिहासकार श्री सौभाग्यसिंह जी शेखावत, भगतपुरा को यह छोटी सी पुस्तिका ''कुलदेवियाँ'' समर्पित करते हुये मुझे जो अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है, उसे शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं है।

लेखक

अनुक्रमणिका

1. भूमिका 07
2. कछवाहों की कुलदेवी जमवाय माता 09
3. राठौड़ वंश की कुलदेवी नागणेचियां माता 11
4. सिसोदिया वंश की कुलदेवी बाण माता 14
5. चौहान वंश की कुलदेवी आशापुरा माता 16
6. तंवर वंश की कुलदेवी चिलाय माता 19
7. सोलंकी वंश की कुलदेवी क्षेमंकरी (खीमज) माता 21
8. परमार वंश की कुलकेवी सचियाय माता 23
9. गौड़ वंश की कुलदेवी महाकाली माता 26
10. पड़िहार वंश की कुलकेवी चामुण्डा माता 29
11. दाहिमा, पुण्डीरों की कुलदेवी दधिमती माता 31
12. दहिया वंश की कुलदेवी कैवाय माता 33
13. जादौन (यदुवंश) की कुलदेवी अंजनी माता 35
14. जादौन (यदुवंश) की कुलदेवी कैला माता 37
15. सैंगर वंश की कुलदेवी विन्ध्यवासिनी माता 39
16. भाटी वंश की कुलदेवी स्वांगियां माता 41
17. करणी माता धाम 44
18. जीण माता धाम 48

भूमिका

लोक देवियाँ हमारी संस्कृति की का प्रमुख अंग हैं, वनवासी से लेकर नगरीय समाज तक इनका प्रभुत्य एवं प्रभामंडल स्थापित हैं। भारत का जनमानस देवताओं की पत्नियों को दैवीय शक्ति के प्रतीक के रुप में मान्यता देता है तथा इनकी स्वतंत्र सत्ता भी स्थापित है। शक्ति के रुप में उनकी वंदना एवं आराधना की जाती है। इसके अतिरिक्त लोक में प्रचलित एवं जन मान्य देवियों की संख्या भी कम नहीं है। मत्स्य पुराण, कश्यप संहिता में इनको सूचिबद्ध भी किया गया है। हिन्दुओं में सती, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, चंडी, कालिका आदि प्रमुख देवियां है। सप्त मातृकाओं में ब्राह्मी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इंद्राणी और चामुंडा की गणना होती है। अष्टमातृकापट में नारसिंही का भी अंकन होता है।

भारत में हिन्दू, जैन, बौद्ध पंथों में समान रुप से देवियों की उपस्थिति दिखाई देती है। बौद्ध पंथ की शाखाओं में वज्रधात्वेश्वरी, लोचना, मामकी, पांड्रा, आर्य तारा, मंजुश्री, नामसंगीति, अपराजिता, वज्रयोगिनी, ग्रहमातृका, गणपतिहृदया, वज्रविदारिणी आदि देवियों की उपस्थिति दिखाई देती है। वहीं जैन पंथ में तीर्थकंरों की प्रमुखता होने के साथ ही चामुंडा, गौरी, लक्ष्मी आदि की देवियों की रुप में पूजा की जाती है।

प्राचीन युनानियों का देव परिवार भी काफी समृद्ध था, यहाँ भी देवताओं की पत्नियों को देवी शक्ति के रुप में स्वीकार किया गया है। मातृदेवी थीटिस, पुत्रदा देवी हिरा, द्युलोक स्वामीनी देवी अथीना, शांति एवं सौख्य भावना की देवी हेस्तिया, हंसवाहिनी ऐफ्रोडाइटि प्रेम और सौंदर्य की देवी थी तथा प्राचीन मिश्र में भी बहुदेववाद की प्रथा थी, यहाँ देवताओं के अतिरिक्त देवियों की भी मान्यता था। देवी इसिस, आनंद, उल्लास एवं प्रेम की देई नूत की विभिन्न रुपों में पूजा की जाती थी।

प्राचीन भारत से लेकर वर्तमान तक लोक देवियाँ लोक जीवन का महत्वपूर्ण आधार हैं। लोक संस्कृति की कल्पना इनके बिना नहीं की जा सकती। ये जनमानस के सुख दुःख का आधार हैं। राजस्थान के राज परिवारों में शक्ति की उपासना की परम्परा रही है। विशेषतः क्षत्रिय समुदाय शक्ति का प्रबल उपासक रहा है। शक्ति के प्रतीक के रुप में लोक देवियों के प्रति जन आस्था एवं श्रद्धा अटूट रही है, जो इन्हें कुलदेवी के रुप में स्थापित करती है। प्रत्येक कुल में परम्परा के अनुरुप कुल देवता एवं कुल देवी की आराध्य के रुप में स्थापना होती है, जो अपने अलौकिक कार्यों से दुःख दूर कर शक्ति प्रदान करने का कार्य करती हैं। श्री रतन सिंह शेखावत द्वारा राजस्थान के क्षत्रियों की कुल देवियों की कथा का संकलन ''कुलदेवियाँ'' नामक पुस्तक में किया गया है, जिसमें राजस्थान के इतिहास में वर्णित क्षत्रिय कुलों की देवियों आशापुरा माता, नागणेचियाँ माता, क्षेमकरी माता, बाण माता, जीण माता, चिलाय माता, जमवाय माता, दधिमति माता, कैवाय माता, सच्चियाय माता, अंजनी माता, कैला माता, विंध्यवासिनी माता, महाकाली माता का प्रमुखता से स्थान दिया है। राजस्थान की

लोक संस्कृति के प्रचारक श्री रतनसिंह शेखावत जी को मेरी अशेष शुभकामनाएँ। यह पुस्तक सर्वजन के लिए संग्रणीय बन गई है तथा संदर्भ ग्रंथ के रुप में भी उपयुक्त है।

दिनांक : 11 सितम्बर 2016
स्थान : अभनपुर,
जिला रायपुर छत्तीसगढ़

ललित शर्मा
इंडोलॉजिस्ट, पत्रकार एवं लेखक
मो–9754433714

कछवाह वंश की कुलदेवी जमवाय माता

जमवाय माता के मंदिर की स्थापना मध्यप्रदेश के नरवर से आकर राजस्थान में कछवाह राज्य स्थापित करने वाले दुल्हेराय कछवाह ने की थी। दुल्हेराय का राजस्थान में आने का समय विभिन्न इतिहासकार सन 1093 से 1123 के बीच मानते है। ''अदम्य योद्धा महाराव शेखाजी'' पुस्तक के लेखक कर्नल नाथू सिंह अपनी इस पुस्तक में दुल्हेराय का राजस्थान आने का समय वि.स.1125 के आस–पास लिखते है।

मध्यप्रदेश के नरवर के शासक सोढदेव के पुत्र दुल्हेराय का दौसा के पास मोरां के शासक रालण सिंह चौहान की पुत्री के साथ विवाह हुआ था। दौसा पर उस वक्त रालण सिंह चौहान व बड़गुजर क्षत्रियों का आधा आधा राज्य था। बड़गुजर हमेशा रालण सिंह को तंग किया करते थे, सो उसने अपने दामाद दुल्हेराय को बुलाकर उनकी सहायता से बड़गुजरों को हराकर दौसा पर कब्जा कर लिया और दौसा का राज्य दुल्हेराय को सौंप दिया। उसके बाद दुल्हेराय ने भांडारेज के मीणा शासकों को हराकर भांडारेज भी जीत लिया। भांडारेज जीतने के बाद दुल्हेराय ने मांच के मीणा शासक पर हमला किया। परन्तु मांच के बहादुर मीणाओं ने दुल्हेराय को युद्ध में करारी शिकस्त दी। इस युद्ध में दुल्हेराय की सेना को काफी नुकसान हुआ और स्वयं दुल्हेराय घायल होकर मूर्छित हो गए थे। जिन्हें मीणा सैनिक मरा हुआ समझ कर छोड़ गए थे। इतिहासकारों के अनुसार युद्ध भूमि में ही मूर्छित दुल्हेराय को जमवाय माता ने दर्शन दिए व युद्ध में विजय होने का आशीर्वाद भी दिया। देवी की कृपा से दुल्हेराय मूर्छित अवस्था से उठ खड़े हुए और जीत का जश्न मनाते मांच के मीणों पर अचानक आक्रमण कर उन्हें मार भगाया और मांच पर अधिकार कर लिया।

गोविन्द सिंह मुण्डियावास के अनुसार इस संबंध में कपड़द्वारे की ख्यात में लिखा है–''पछै मांची में मीणा को अमल छो। सो मांची पै दुल्हेराय जी चढ़्या। जदि मीणां खबरि पाये। राठकूंडला और सब सिमटि आये। मांचि सूं चढ़्या सो दुल्हेराय जी वां मीणां के मांचि सूं कोस तीन अगाऊ नागा में झगड़ो हुयो सो मीणां को लोग तो मरियो नहीं। अर दुल्हेराय जी घायल होय फोज सुधा खेत पड़्या। जदि मीणा में फतै का ढोल बाज्या। अर मांचि में आय मतवाळ करी। पाछै अरध रात्रि के समै देवी बुढवाय आई अर दुल्हेराय ने कही 'तू उठ', जदि दुल्हेराय जी खड़ा होय अरज करी। आप कुण छो? जदि देवी बोली मैं थारी देवी बुढवाय छूं। जदि राजा अस्तुति करी, जदि देवी प्रसन्न होय वरदान दिनों। थारी रण में बिजै होसी। अठी की वसुधा म्हे तोनें दीनी। अब तांई थे देवी बुढवाय कर पूजै छा। आज सूं देवी जमुवाय कर पूजो। अर ई नाका म्हारो मंदिर बीणवावो। थारो अठै राज होसी।''

ख्यात की इस बात से जाहिर है कि कछवाह वंश पहले बुढवाय माता के नाम से अपनी कुलदेवी की उपासना करता रहा है। लेकिन दुल्हेराय के राजस्थान आने व यहाँ राज्य

स्थापित करने के बाद अपनी कुलदेवी की स्थापना के बाद यह देवी जमवाय माता कहलाई। इससे पहले यह देवी बुढवाय माता कहलाती थी। इतिहासकारों के अनुसार दुल्हेराय ने देवी की जो प्रतिमा स्थापित की थी वो वे अपने साथ अपने गृह नगर से लाये थे।

मांच पर अधिकार के बाद दुल्हेराय ने मांच में एक चबूतरा बनाकर उस पर देवी जमवाय माता की मूर्ति की स्थापना की जो आज भी मंदिर के गर्भगृह में स्थापित है। इसके बाद दुल्हेराय ने मांच का नाम अपने पूर्वज राम व देवी जमवाय के नाम पर जमवा रामगढ़ रख अपनी राजधानी बनाया। मांच विजय के बाद दुल्हेराय ने खोह, गेटोर, झोटवाड़ा आदि मीणा राज्यों को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया व अपनी राजधानी को जमवा रामगढ़ से खोह स्थान्तरित कर दिया। दुल्हेराय की माघ सुदी 7 वि.स.1192 में मृत्यु होने बाद उनका पुत्र कांकिल देव गद्दी पर बैठा। जिसने आमेर के मीणा शासकों को हराकर खोह से अपनी राजधानी आमेर स्थान्तरित की, जो जयपुर की स्थापना तक उनके वंश की राजधानी रही। सिर्फ आमेर, जयपुर ही नहीं कछवाह वंश के वंशजों ने राजस्थान के और भी बड़े भू–भाग पर अपने अपने कई राज्य यथा– अलवर, खंडेला, सीकर, झुंझनू, खेतड़ी, दांता, खुड़, नवलगढ़, मंडावा आदि स्थापित कर देश की आजादी तक राज्य किया। राजस्थान में दुल्हेराय के वंशज राजावत, शेखावत, नरूका, नाथावत, खंगारोत आदि उपशाखाओं के नाम से जाने जाते है।

देवी जमवाय माता के मंदिर की दुल्हेराय द्वारा स्थापना करने के बाद उनके वंश के विभिन्न शासकों ने मंदिर में समय समय पर निर्माण कार्य करवा कर उसका विस्तार करवाया तथा देवी जमवाय माता को अपनी कुलदेवी के रूप में रूप ने स्वीकार करते हुए इसकी आराधना की। मध्य काल में कछवाहों ने भारत की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और माँ जमवाय के आशीर्वाद, उसे स्मरण कर अध्यात्मिक, दृढ़ता, आत्मिक संतोष के साथ शक्ति आत्मसात करने की अनुभूति कर, कछवाह योद्धाओं ने देश के महत्त्वपूर्ण युद्धों में वीरता प्रदर्शित कर, अपने शौर्य, साहस, निडरता की इतिहास में छाप छोड़ी। कछवाह वंश की सभी उपशाखाओं के शासक व आम वंशज जन्म, शादी, पगड़ी दस्तूर के बाद यहाँ जात देने आवश्यक रूप से आते थे, तथा आज भी यह परम्परा सुचारू रूप से जारी है।

इस तरह यह मंदिर कछवाह वंश के लोगों की अपनी कुलदेवी के रूप में आस्था का केन्द्र तो है ही साथ ही इस पुरे क्षेत्र में एक बहुत बड़ा जन–आस्था का प्राचीन समय से केन्द्र भी है। इस मंदिर की प्राचीनता की पुष्टि इतिहास की पुस्तकों में उल्लेख के साथ बाहर लगा पुरातत्व विभाग का इस मंदिर की प्राचीनता को दर्शाते हुए लगा सूचना पट्ट भी करता है।

देवी के मंदिर में मांस मदिरा चढ़ाना वर्जित है। देवी सात्विक है। जिसके जमवा रामगढ के बाद भौडकी (जिला झुंझनु), महरोली एवं मदनी मंढा (जिला सीकर), भूणास (जिला नागौर) आदि स्थानों पर भी मंदिर बने है।

राठौड़ वंश की कुलदेवी नागणेचियां माता

देश के मध्यकालीन इतिहास में राजपूतों की बड़ी भूमिका रही है। जिनमें राठौड़ों को न्यारा ही गौरव प्राप्त है। शूरवीरता के उन्होंने जो आयाम प्रस्तुत किये, वे देश में ही नहीं दुनिया भर में मिसाल बने। इसीलिए उनका स्थायी विशेषण ''रणबंका'' बना। राठौड़ मारवाड़ में आने से पूर्व ''राष्ट्रकूट'' रहे हैं। कन्नौज का राज्य अपने अधिकार से निकल जाने के बाद राव सीहा मारवाड़ की ओर आये और यहां अपना राज्य स्थापित किया। उन्होंने पाली पर अधिकार किया। उनके पश्चात् उनके पुत्र राव आस्थान ने खेड़ विजित किया।

आस्थान के धार्मिक प्रवृति के पुत्र राव धुहड़ ने बाड़मेर के पचपदरा परगने के गाँव नागाणा में अपने वंश की कुलदेवी को प्रतिष्ठापित किया। आज बाड़मेर जिले की पचपदरा तहसील का यह स्थान धार्मिक आस्था के कारण प्रसिद्धि प्राप्त है। यहां प्राकृतिक मनमोहक स्वरुप की छठा देखते ही बनती है। पहाड़ों की ओट में मरुस्थल के अंचल में, सूखी झाड़ियों के मध्य स्थित राव धूहड़जी का बनाया हुआ माँ का यह मंदिर श्रद्धा का प्रमुख केन्द्र है। यहां पर स्थापित माता की मूर्ति की आज तक राठौड़ वंश अपनी कुलदेवी के रूप में पूजा–अर्चना करता आया है। यह मंदिर धार्मिक दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण है तथा राठौड़ वंश के अतिरिक्त भी अन्य जातियों के श्रद्धालुओं का आस्था का भी केंद्र बना हुआ है।

देवी का नाम नागणेची कैसे पड़ा व इससे पूर्व राठौड़ों के इस राजवंश की कुलदेवी का क्या नाम था? इसकी प्रतिमा कहाँ से लाई गई पर विभिन्न ख्यातों, इतिहास पुस्तक व लोक मान्यताओं के अनुसार विभिन्न कहानियां प्रचलित है। पर इतना तय है कि नागाणा गांव में प्रतिष्ठापित होने के कारण स्थानीय भाषा में रणबंका राठौड़ों की कुलदेवी का नाम ''नागणेची'' पड़ा। देवी का ये 'नागणेची' स्वरुप लौकिक है। 'नागाणा' शब्द के साथ 'ची' प्रत्यय लगकर 'नागणेची' शब्द बनता है। किन्तु बोलने की सुविधा के कारण 'नागणेची' हो गया। 'ची' प्रत्यय 'का' का अर्थ देता है। अतः 'नागणेची' शब्द का अर्थ हुआ– 'नागाणा की'। इस प्रकार राठौड़ों की इस कुलदेवी का नाम स्थान के साथ जुड़ा हुआ है। इसीलिए 'नागणेची' को 'नागाणा री राय' (नागाणा की अधिष्ठात्री देवी) भी कहते है। वैसे राठौड़ों की कुलदेवी होने के कारण 'नागणेची' 'राटेश्वरी' भी कहलाती है। नागाणा एक गाँव है जो वर्तमान में राजस्थान प्रदेश के बाड़मेर जिले में आया हुआ है। एक कहावत प्रसिद्ध है 'नागाणा री राय, करै बैल नै गाय।' यह कहावत प्रसंग विशेष के कारण बनी। प्रसंग यह है कि एक चोर कहीं से बैल चुरा कर भागा। पता चलते ही लोग उसका पीछा करने लगे। भय के मारे वह चोर नागाणा के नागणेची मंदिर में जा पहुंचा और देवी से रक्षा की गुहार करने लगा कि वह कृपा करे, फिर कभी वह चोरी का कृत्य नहीं करेगा। अपनी शरण में आये उस चोर पर नागणेची ने कृपा की। जब पीछा करने वाले वहां पहुंचे तो उन्हें देवी–कृपा से बैलों के स्थान पर गायें दिखी। उन्होंने

सोचा कि चोर कहीं और भागा है और वे वहां से चले गए। इस प्रकार चोर की रक्षा हो गई। कुलदेवी 'नागणेची' का पूर्व नाम 'चक्रेश्वरी' रहा है। राठौड़ भी मारवाड़ में आने से पूर्व 'राष्ट्र कूट' रहे है। पोकरण का इतिहास व मूंदियाड़ री ख्यात नामक पुस्तक के अनुसार राव धुहड़ ने कल्याण कटक (कन्नौज) से अपनी कुलदेवी चक्रेश्वरी माता की मूर्ति लाकर नागाणा में स्थापित की। राठौड़ वंश री विगत एवं राठौड़ों री वंशावली में वर्णित जानकारी के अनुसार राव धुहड़ ने मंडोर के थिरपाल प्रतिहार को परास्त कर उनसे देवी की प्रतिमा प्राप्त की। जिसे नागाणा में स्थापित किया गया और कालांतर में देवी का नाम नागणेची पड़ा। राठौड़ों की ख्यात ने राव धुहड़ द्वारा चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमा कर्णाटक से लाना लिखा है, जिसे नागाणा में स्थापित करने के कारण नागणेची नाम पड़ा। उदयभाण चांपावत री ख्यात के पृ. 47–48 पर इस सम्बन्ध में जो लिखा है, उसके अनुसार राव धुहड़ ने कर्णाटक की यात्रा कर वहां प्रतिष्ठापित चक्रेश्वरी देवी की मूर्ति, जो कि सोने की थी। उसे लेकर नागाणा गांव में स्थापित की, लेकिन मंदिर के आगे अपवित्रता होने से देवी ने अपना मूल स्वरूप बदल दिया और प्रतिमा सोने से पत्थर में बदल गई।

डा. विक्रमसिंह भाटी ने अपनी पुस्तक "राजस्थान की कुलदेवियां" में ''आस्था रो उजास'' नामक ग्रन्थ का हवाला देते हुए एक लोक मान्यता का विवरण दिया है–"नागाणा गांव में नागणेचियां देवी शिला रूप में स्वतः प्रकट हुई थी। इस सन्दर्भ में ग्रन्थ लिखता है कि "राव धुहड़ अपनी श्रद्धानुसार शक्ति रूपा देवी की पूजा कर रहे थे। एक दिन वहां शिला प्रकट होने लगी। वह दृश्य देखकर वहां उपस्थित लोग स्तब्ध रह गये। देवी ने प्रकट होने से पूर्व कहा था कि "हंकारो (ध्वनि) मत करना। परन्तु पास में ही चर रहा पशुधन जब इधर उधर होने लगा तब किसी ने व्यक्ति ने टिचकारा (पशु रोकने की विशेष ध्वनि) कर दिया, इसलिए देवी लगभग 2 फुट शिला रूप में प्रकट होकर रह गई।

हालाँकि लोक मान्यताओं व उपलब्ध स्थानीय ख्यातों में देवी के प्रकट होने को लेकर विरोधाभास है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नागाणा गांव में स्थित माता का मंदिर ही राठौड़ राजवंश की कुलदेवी नागणेचियां माता का प्रथम धाम माना गया है और राठौड़ राजवंश नागणेचियां देवी की अपनी कुलदेवी के रूप में सदियों से उपासना करता आया है। मारवाड़ राज्य के निशान में श्येन (बाज, चील) पक्षी की उपस्थिति पर प्रकाश डालते हुए डा. विक्रमसिंह भाटी ''राजस्थान की कुलदेवियाँ'' ग्रन्थ में लिखते है– ''नागणेचियां देवी का दूसरा रूप श्येन पक्षी है। श्येन पक्षी का रूप धारण कर माता राज्य की रक्षा करती है। इसी कारण राठौड़ों द्वारा राजकीय ध्वजा पर इसी पक्षी का चिन्ह अंकित किया गया है। मारवाड़ में सफेद रंग के श्येन पक्षी को देवी का रूप माना गया है। कई शताब्दियों पूर्व नागणेचियां देवी अलग अलग रूप में भक्तों द्वारा पूजित होती आ रही है जैसे कि सतयुग में मंछादेवी, त्रेतायुग में राठेश्वरी, द्वापर में पंखणी देवी और द्वापर में नागणेचियां देवी–

सर्वमंगल मांगल्यै शिवे सर्वार्थ साधि के।
शरण्यै त्रयम्बके गौरी चक्रेश्वरी नमोस्तुते।।"

माता द्वारा श्येन पक्षी का रूप धारण कर राज्य की रक्षा करने के उदाहरण की अक्सर जोधपुर में चर्चा सुनी है कि– भारत–पाक युद्ध में जोधपुर पाकिस्तानी वायु सेना के महत्त्वपूर्ण निशाने पर था। पाक वायुसेना ने जोधपुर पर बम वर्षा की थी। तब देवी माँ श्येन पक्षी के

रूप में जोधपुर के आकाश में रक्षा के लिए तैनात रही और उसकी कृपा से एक भी बम फटा नहीं। इस घटना के बाद युद्ध खत्म होते ही स्थानीय निवासियों ने माता की पूजा अर्चना के लिए कई कार्यक्रम आयोजित कर माता को धन्यवाद ज्ञापित किया। आज भी नागणेचियां माता की पूजा का उत्सव मारवाड़ में बड़े चाव व धूमधाम से मनाया जाता है। प्रसाद में लापसी बाँटने की परम्परा है। सूत के सात धागों में सात गांठे लगाकर बांह पर देवी के नाम से रक्षा सूत्र भी बाँधा जाता है जिसे देवी का कड़ा कहा जाता है।

नागाणा के अतिरिक्त नागणेचियां देवी का जोधपुर के किले व बीकानेर शहर में भी मंदिर अवस्थित है। जहाँ लाखों की संख्या में श्रद्धालु अपनी आस्था प्रकट करते हुए पूजा अर्चना को उपस्थित होते है।

मंदिर के प्रबंध हेतु प्रबंध समिति व ट्रस्ट बना है। मंदिर में सन 2005 से ही पशुबलि पर प्रतिबंध है। श्रद्धालुओं के रहने आदि की भी सुविधाएँ मंदिर ट्रस्ट द्वारा संचालित है।

सिसोदिया वंश की कुलदेवी बायण माता

सेव्या सदा सिसोदिया मही बधायो माण।
धनुष बाण धारण करीया बण तु माता बायण।।

सिसोदिया वंश की कुलदेवी का नाम ''बायण माता'' है। जिन्हें बाण माता भी कहते हैं। ऐतिहासिक सूत्रों के मुताबिक सिसोदिया–गुहिलोत वंश की कुलदेवी का नाम बायण माता इसलिए है क्योंकि जब सिसोदिया सौराष्ट्र गुजरात, से मेवाड़ आए तब वहां गुजरात में नर्मदा नदी से जो पाषाण निकलते थे, उनसे शिवजी की स्थापना होती थी। उन्हें बाण–लिंग कहा जाता था। जिनके नाम से मेवाड़ में बाणेश्वरजी का मंदिर भी है। उन्हीं बाणेश्वर महादेव की देवी पार्वती जी का एक अंश माँ बायण के रूप में प्रकट हुआ मानते हैं, जिन्होंने प्राचीन काल में बाणासुर देत्य का वध किया था और इसीलिए माँ दुर्गा का वह स्वरुप बायण माता के नाम से विख्यात है। जिनके उपासक सिसोदिया वंश के सभी कुल हैं।

यह परंपरा यहीं पर नहीं, विदेश में भी रही है। वहां भी बाण को देवी के रूप में जाना जाता है। एक चित्र में नाग पर देवी को विराजित किया गया है। यह नाग बाण के रूप में है। इसकी पहचान 'गोडेस आफ स्नेक' के रूप में की गई है। हमारे यहां नागमुखी बाणों का विवरण मिलता है, उनके चित्रादि भी धनुवेर्दादि ग्रंथों में मिलते हैं। महाभारत में अनेक प्रकार के मुखधारी बाणों का वर्णन मिलता है और उसका विश्लेषण–विवरण भारतभाव दीपिका में भी लिखा गया है। प्रो. धर्मपाल शर्मा के अनुसार ''गुजरात में होकर नर्मदा नदी समुद्र में मिलती है। यह नदी शिवलिंग की प्राप्ति का मुख्य स्थान है। इस पवित्र नदी से प्राप्त लिंग बाणलिंग (नर्मदेश्वर) कहलाते है। संभव है बाणेश्वर से शक्ति स्वरूपा बाणमाता का नामकरण हुआ हो। यह स्मरणीय है कि महाराणा भीमसिंह ने इन्हीं कुलदेवी बाणमाता की प्रेरणा से अपने स्वपूजित शिवलिंग को बाणनाथजी का नाम दिया।''

मेवाड़ में माँ बायण की प्राचीन मूर्ति नागदा जाति के एक ब्राह्मण पुरोहित परिवार के पास रहती रही है। यह व्यवस्था इसलिए स्थापित की गयी थी क्योंकि मेवाड़ के महाराणाओं को शत्रुओं से युद्ध के लिए महलों से बाहर रहना पड़ता था और किलों पर दुश्मन का कब्जा होने पर बायण माता की मूर्ति को खतरा होने की वजह से ही नागदा ब्राह्मणों को इसकी जिम्मेदारी दी गयी थी। जब जब मेवाड़ की राजधानी कुछ समय के लिए स्थानांतरित हुई, वहीं यह परिवार कुलदेवी के सहित वहां उपस्थित रहा. नागदा, आहाड़, चितौड़ एवं उदयपुर मुख्य है।

ऐतिहासिक स्त्रोत यह भी साबित करते हैं के बायण माता के नवमी के दिन बकरे की बलि नहीं दी जाती। क्योंकि यह सात्विक देवी हैं। जो बलिदान दिया जाता है वह माँ दुर्गा के ही तामसिक स्वरुप कालीका माता के चढाया जाता है। साथ ही यह बलिदान कहीं कहीं

भैंरू जी के नाम से भी चढाया जाता है। किन्तु माता बायण सात्विक ही रहती हैं। यह बताना मुश्किल है कि यह अपभ्रंश कब और कहां से शुरू हुआ कि सिसोदिया बायण माता के नाम से बलि देने लगे।

कुलदेवी माँ बायण का मंदिर भट्टी में बने केलु और बांस की कच्ची छत और दीवारों, जमीन को गौ माता के गोबर और ठिकाने के खेत की मिटटी से लीप कर बनाया जाता है। इसमें माता खुश रहती हैं। मंदिर की छत पर यदि ध्वजा फहराई जाये, तो यह ध्यान रखा जाता है कि उसकी छाया किसी भी घर पर नहीं पड़े। अन्यथा उस घर–परिवार का नाश हो जाता है।

पुराणों के अनुसार हजारों वर्षों पूर्व बाणासुर नाम का एक दैत्य था। जिसकी अनेक राजधानियाँ थी। बाणासुर को कहीं कहीं राजा भी कहा गया है और उसके मंदिर भी मौजूद है। जिसको आज भी उत्तराखंड के कुछ गांवों में पूजा जाता है।

बाणासुर भगवान शिव का अनन्य भक्त था। शिव के आशीर्वाद से उसे हजारों भुजाओं की शक्ति प्राप्त थी। अपनी तपस्या से प्रभावित कर बाणासुर ने शिव को अपने किले का रक्षक भी बना लिया था। इस तरह असीम शक्ति पाकर बाणासुर ने देवताओं को भयभीत कर दिया था। धर्म ग्रंथों के अनुसार बाणासुर का कृष्ण से भी युद्ध हुआ था। जिसमें कृष्ण ने बाणासुर के हाथ काट दिए थे। बाणासुर ने इस युद्ध में श्री कृष्ण से माफी मांग ली। फिर भी बाणासुर की प्रवृति नहीं बदली और वह ज्यादा क्रूर हो गया। तब सभी राजाओं के परामर्श से ऋषि–मुनियों ने यज्ञ किया। यज्ञ की अग्नि से माँ पार्वती एक छोटी सी कन्या के रूप में प्रकट हुयीं और राजाओं से वर मांगने को कहा।

तब राजाओं ने देवी माँ से बाणासुर से रक्षा की कामना करी (जिनमे विशेषकर संभवतः सिसोदिया वंश के पूर्वज प्राचीन सूर्यवंशी राजा भी रहे होंगे) तब माता जी ने सभी को आश्वस्त किया कि वे सब धैर्य रखें, बाणासुर का वध समय आने पर अवश्य मेरे ही हाथों होगा।

जब बाणासुर के पाप बढ़ गए तब देवी माँ ने प्रचंड रूप धारण कर उसकी पूरी सेना का नाश कर दिया और अपने चक्र से बाणासुर का सर कट कर उसका वध कर दिया। बाणासुर का वध करने की वजह से बायण माता या बाण माता के नाम से जाना जाता है।

सूर्यवीर सिंह चुण्डावत

चौहान वंश की कुलदेवी आशापुरा माता

नाडोल शहर (जिला पाली, राजस्थान) का नगर रक्षक लक्ष्मण हमेशा की तरह उस रात भी अपनी नियमित गश्त पर था। नगर की परिक्रमा करते करते लक्ष्मण प्यास बुझाने हेतु नगर के बाहर समीप ही बहने वाली भारमली नदी के तट पर जा पहुंचा। पानी पीने के बाद नदी किनारे बसी चरवाहों की बस्ती पर जैसे ही लक्ष्मण ने अपनी सतर्क निगाहें डाली, तब एक झोंपड़ी पर हीरों के चमकते प्रकाश ने उसे आकर्षित किया। वह तुरंत झोंपड़ी के पास पहुंचा और वहां रह रहे चरवाहे को बुला कर प्रकाशमान हीरों का राज पूछा। चरवाह भी प्रकाश देख अचंभित हुआ और झोंपड़ी पर रखा वस्त्र उतारा। वस्त्र में हीरे चिपके देख चरवाह के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। उसे समझ ही नहीं आया कि जिस वस्त्र को उसने झोपड़ी पर डाला था, उस पर तो जौ के दाने चिपके थे।

लक्ष्मण द्वारा पूछने पर चरवाहे ने बताया कि वह पहाड़ी की कन्दरा में रहने वाली एक वृद्ध महिला की गाय चराता है। आज उस महिला ने गाय चराने की मजदूरी के रूप में उसे कुछ जौ दिए थे। जिसे वह बनिये को दे आया, कुछ इसके चिपक गए, जो हीरे बन गये। लक्ष्मण उसे लेकर बनिए के पास गया और बनिए से हीरे बरामद कर वापस ग्वाले को दे दिये। लक्ष्मण इस चमत्कार से विस्मृत था। अतः उसने ग्वाले से कहा– अभी तो तुम जाओ ! लेकिन कल सुबह ही मुझे उस कन्दरा का रास्ता बताना जहाँ वृद्ध महिला रहती है।

दुसरे दिन लक्ष्मण जैसे ही ग्वाले को लेकर कन्दरा में गया, कन्दरा के आगे समतल भूमि पर उनकी और पीठ किये वृद्ध महिला गाय का दूध निकाल रही थी। उसने बिना देखे लक्ष्मण को पुकारा– "लक्ष्मण ! राव लक्ष्मण आ गये बेटा, आओ।"

आवाज सुनते ही लक्ष्मण आश्चर्यचकित हो गया और उसका शरीर एक अद्‌भुत प्रकाश से नहा उठा। उसे तुरंत आभास हो गया कि यह वृद्ध महिला कोई और नहीं, उसकी कुलदेवी माँ शाकम्भरी ही है और लक्ष्मण सीधा माँ के चरणों में गिरने लगा, तभी आवाज आई– मेरे लिए क्या लाये हो बेटा? बोलो मेरे लिए क्या लाये हो?

लक्ष्मण को माँ का मर्मभरा उलाहना समझते देर नहीं लगी और उसने तुरंत साथ आये ग्वाला का सिर काटकर माँ के चरणों में अर्पित कर दिया।

लक्ष्मण द्वारा प्रस्तुत इस अनोखे उपहार से माँ ने खुश होकर लक्ष्मण से वर मांगने को कहा। लक्ष्मण ने माँ से कहा– माँ आपने मुझे राव संबोधित किया है। अतः मुझे राव (शासक) बना दो, ताकि मैं दुष्टों को दंड देकर प्रजा का पालन करूँ। मेरी जब इच्छा हो आपके दर्शन कर सकूं और इस ग्वाले को पुनर्जीवित कर देने की कृपा करें। वृद्ध महिला "तथास्तु" कह कर अंर्तध्यान हो गई। जिस दिन यह घटना घटी वह वि.स. 1000, माघ सुदी 2 का दिन था। इसके बाद लक्ष्मण नाडोल शहर की सुरक्षा में तन्मयता से लगा रहा।

उस जमाने में नाडोल एक संपन्न शहर था। अतः मेदों की लूटपाट से त्रस्त था। लक्ष्मण के आने के बाद मेदों को तकड़ी चुनौती मिलने लगी। नगरवासी अपने आपको सुरक्षित महसूस करने लगे। एक दिन मेदों ने संगठित होकर लक्ष्मण पर हमला किया। भयंकर युद्ध हुआ। मेद भाग गए, लक्ष्मण ने उनका पहाड़ों में पीछा किया और मेदों को सबक सिखाने के साथ ही खुद घायल होकर अर्धविक्षिप्त हो गया। मूर्छा टूटने पर लक्ष्मण ने माँ को याद किया। माँ को याद करते ही लक्ष्मण का शरीर तरोताजा हो गया। सामने माँ खड़ी थी बोली– बेटा ! निराश मत हो। शीघ्र ही मालव देश से असंख्य घोड़े तेरे पास आयेंगे। तुम उन पर केसरमिश्रित जल छिड़क देना। घोड़ों का प्राकृतिक रंग बदल जायेगा। उनसे अजेय सेना तैयार करो और अपना राज्य स्थापित करो।

अगले दिन माँ का कहा हुआ सच हुआ। असंख्य घोड़े आये। लक्ष्मण ने केसर मिश्रित जल छिड़का। घोड़ों का रंग बदल गया। लक्ष्मण ने उन घोड़ों की बदौलत सेना संगठित की। इतिहासकार डा. दशरथ शर्मा इन घोड़ों की संख्या 12000 हजार बताते है तो मुंहता नैंणसी ने इन घोड़ों की संख्या 13000 लिखी है। अपनी नई सेना के बल पर लक्ष्मण ने लुटरे मेदों का सफाया किया। जिससे नाडोल की जनता प्रसन्न हुई और उसका अभिनंदन करते हुए नाडोल के अयोग्य शासक सामंतसिंह चावड़ा को सिंहासन से उतार लक्ष्मण को सिंहासन पर आरूढ कर पुरस्कृत किया।

इस प्रकार लक्ष्मण माँ शाकम्भरी के आशीर्वाद और अपने पुरुषार्थ के बल पर नाडोल का शासक बना। मेदों के साथ घायल अवस्था में लक्ष्मण ने जहाँ पानी पिया और माँ के दुबारा दर्शन किये, जहाँ माँ शाकम्भरी ने उसकी सम्पूर्ण आशाएं पूर्ण की वहां राव लक्ष्मण ने अपनी कुलदेवी माँ शाकम्भरी को "आशापुरा माँ" के नाम से अभिहित कर मंदिर की स्थापना की तथा उस कच्ची बावड़ी जिसका पानी पीया था को पक्का बनवाया। यह बावड़ी आज भी अपने निर्माता वीरवर राव लक्ष्मण की याद को जीवंत बनाये हुए है। आज भी नाडोल में आशापुरा माँ का मंदिर लक्ष्मण के चौहान वंश के साथ कई जातियों व वंशों के कुलदेवी के मंदिर के रूप में ख्याति प्राप्त कर उस घटना की याद दिलाता है। आशापुरा माँ को कई लोग आज आशापूर्णा माँ भी कहते है और अपनी कुलदेवी के रूप में पूजते है।

कौन था लक्ष्मण ?

लक्ष्मण शाकम्भर (वर्तमान नमक के लिए प्रसिद्ध सांभर, राजस्थान) के चौहान राजा वाक्पितराज का छोटा पुत्र था। पिता की मृत्यु के बाद लक्ष्मण के बड़े भाई को सांभर की गद्दी और लक्ष्मण को छोटी सी जागीर मिली थी। पर पराक्रमी, पुरुषार्थ पर भरोसा रखने वाले लक्ष्मण की लालसा एक छोटी सी जागीर कैसे पूरी कर सकती थी? अतः लक्ष्मण ने पुरुषार्थ के बल पर राज्य स्थापित करने की लालसा मन में ले जागीर का त्याग कर सांभर छोड़ दिया। उस वक्त लक्ष्मण अपनी पत्नी व एक सेवक के साथ सांभर छोड़ पुष्कर पहुंचा और पुष्कर में स्नान आदि कर पाली की ओर चल दिया। उबड़ खाबड़ पहाड़ियों को पार करते हुए थकावट व रात्री के चलते लक्ष्मण नाडोल के पास नीलकंठ महादेव के मंदिर परिसर को सुरक्षित समझ आराम करने के लिए रुका। थकावट के कारण तीनों वहीं गहरी नींद में सो गये। सुबह मंदिर के पुजारी ने उन्हें सोये देखा। पुजारी सोते हुए लक्ष्मण के चेहरे के तेज से समझ गया कि यह किसी राजपरिवार का सदस्य है। अतः पुजारी ने लक्ष्मण के मुख पर

पुष्पवर्षा कर उसे उठाया। परिचय व उधर आने प्रयोजन जानकार पुजारी ने लक्ष्मण से आग्रह किया कि वो नाडोल शहर की सुरक्षा व्यवस्था संभाले। पुजारी ने नगर के महामात्य संधिविग्रहक से मिलकर लक्ष्मण को नाडोल नगर का मुख्य नगर रक्षक नियुक्त करवा दिया। जहाँ लक्ष्मण ने अपनी वीरता, कर्तव्यपरायणता, शौर्य के बल पर गठीले शरीर, गजब की फुर्ती वाले मेद जाति के लुटेरों से नाडोल नगर की सुरक्षा की और जनता का दिल जीता। उस काल नाडोल नगर उस क्षेत्र का मुख्य व्यापारिक नगर था। व्यापार के चलते नगर की संपन्नता लुटेरों व चोरों के आकर्षण का मुख्य केंद्र थी। पंचतीर्थी होने के कारण जैन श्रेष्ठियों ने नाडोल नगर को धन–धान्य से पाट डाला था। हालाँकि नगर सुरक्षा के लिहाज से एक मजबूत प्राचीर से घिरा था, पर सामंतसिंह चावड़ा जो गुजरातियों का सामंत था। अयोग्य और विलासी शासक था। अतः जनता में उसके प्रति रोष था। जो लक्ष्मण के लिए वरदान स्वरूप काम आया।

चौहान वंश की कुलदेवी शुरू से ही शाकम्भरी माता रही है, हालाँकि कब से है का कोई ब्यौरा नहीं मिलता। लेकिन चौहान राजवंश की स्थापना से ही शाकम्भरी को कुलदेवी के रूप में पूजा जाता रहा है। चौहान वंश का राज्य शाकम्भर (सांभर) में स्थापित हुआ तब से ही चौहानों ने माँ आद्धयशक्ति को शाकम्भरी के रूप में शक्तिरूपा की पूजा अर्चना शुरू कर दी थी।

माँ आशापुरा मंदिर तथा नाडोल राजवंश पुस्तक के लेखक डॉ. विन्ध्यराज चौहान के अनुसार– ज्ञात इतिहास के सन्दर्भ में सम्पूर्ण भारतवर्ष में नगर (ठी.उनियारा) जनपद से प्राप्त महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति सवार्धिक प्राचीन है। 1945 में अंग्रेज पुरातत्वशास्त्री कार्लाइल ने नगर के टीलों का सर्वेक्षण किया। 1949 में श्रीकृष्णदेव के निर्देशन में खनन किया गया तो महिषासुरमर्दिनी के कई फलक भी प्राप्त हुए जो आमेर संग्रहालय में सुरक्षित है।

नाडोल में भी राव लक्ष्मण ने माँ की शाकम्भरी माता के रूप में ही आराधना की थी, लेकिन माँ के आशीर्वाद स्वरूप उसकी सभी आशाएं पूर्ण होने पर लक्ष्मण ने माता को आशापुरा (आशा पूरी करने वाली) संबोधित किया। जिसकी वजह से माता शाकम्भरी एक और नाम "आशापुरा" के नाम से विख्यात हुई और कालांतर में चौहान वंश के लोग माता शाकम्भरी को आशापुरा माता के नाम से कुलदेवी मानने लगे।

भारतवर्ष के जैन धर्म के सुदृढ. स्तम्भ तथा उद्योगजगत के मेरुदंड भण्डारी जो मूलतः चौहान राजवंश की ही शाखा है, भी माँ आशापुरा को कुलदेवी के रूप में मानते है। गुजरात के जड़ेचा भी माँ आशापुरा की कुलदेवी के रूप में ही पूजा अर्चना करते है।

माँ आशपुरा के दर्शन लाभ हेतु अजमेर–अहमदाबाद रेल मार्ग पर स्थित रानी रेल स्टेशन पर उतरकर बस व टैक्सी के माध्यम से नाडोल जाया जा सकता है। मंदिर में पशुबलि निषेध है।

तंवर वंश की कुलदेवी चिलाय माता

तूं सगती तंवरा तणी, चावी मात चिलाय।
म्हैर करी अत मात थूं, दिल्ली राज दिलाय।।

भारतीय संस्कृति में क्षत्रियों द्वारा शक्ति की उपासना–आराधना करने की चली आ रही परम्परा के अनुरूप में तंवर वंश चिलाय माता की कुलदेवी के रूप में पूजा आराधना करता है। इतिहास में तंवरों की कुलदेवी के अनेक नाम मिलते हैं जैसे चिलाय माता, जोग माया (योग माया), योगेश्वरी (जोगेश्वरी), सरूण्ड माता, सारंग माता, मनसादेवी आदि।

दिल्ली के इतिहास में तंवरो की कुलदेवी का नाम योगमाया मिलता है। क्षत्रिय समाज के चार प्राचीन महत्वपूर्ण वंशों में शुमार चन्द्र वंश में कौरव, पाण्डव, यादव राजवंश उत्तरी भारत के प्रमुख राजवंशों में विख्यात है। चंद्रवंशी पाण्डव राजवंश ही कालांतर में तंवर राजवंश कहलाया। जिसे इतिहास में तोमर राजवंश लिखा जाता है। इस राजवंश के पाण्डव पूर्वजों की वर्तमान दिल्ली के पास इन्द्रप्रस्थ नाम से राजधानी थी। जहाँ पाण्डवों ने अपनी आराध्य देवी योगमाया की पूजा आराधना करने हेतु भगवान श्रीकृष्ण के सहयोग से मंदिर बनवाया जो आज भी यथावत है। अन्य मान्यताओं के अनुसार तंवरों के पूर्वज पांडवों ने भगवान कृष्ण की बहन को कुलदेवी मानकर इन्द्रप्रस्थ में कुलदेवी का मंदिर बनवाया और उसी स्थान पर दिल्ली के संस्थापक राजा अनंगपाल प्रथम ने पुनः योगमाया के मंदिर का निर्माण करवाया। इसी मंदिर के कारण तंवरों की राजधानी को योगिनीपुर भी कहा गया, जो महरौली के पास स्थित है। यह इतिहास ग्रंथो व भारतीय पुरातत्व विभाग से पुष्ट है।

तोमरों की अन्य शाखा और ग्वालियर के इतिहास में तंवरो की कुलदेवी का नाम योगेश्वरी ओर जोगेश्वरी भी मिलता है। ऐसा माना जाता है कि योगमाया (जोग माया) को ही बाद में योगेश्वरी, जोगेश्वरी के नाम से पुकारा जाने लगा। ग्वालियर के अंतिम तोमर शासक और हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप के विशेष सहयोगी राजा रामशाह तंवर के वंशजों ने बीकानेर, जोधपुर व जयपुर राज्यों में अनेक ठिकाने स्थापित किये। इसी श्रंखला में तंवरों की एक शाखा ने पाटण में नवीन राज्य की स्थापना की। जिसे राजस्थान में तोरावाटी (तंवरावाटी) के नाम से जाना जाता है। इन्हीं तंवर शासकों ने अपनी आराध्य देवी की सरुंड गांव की पहाड़ी पर मंदिर बनवाकर स्थापना की। पाटण के इतिहास मे पाटण के राजा राव भोपाजी तंवर द्वारा कोटपुतली के पास कुलदेवी का मंदिर बनवाने का विवरण मिलता है। जहाँ पहले अज्ञातवास के दौरान पांडवों ने योगमाया का मंदिर बनाया था। योगमाया के इस मंदिर को सरुंड गाँव में होने के चलते स्थानीय तौर पर सरुंड माता के नाम से भी पुकारा जाता है। इस तरह राजस्थान में तोरावाटी (तंवरावाटी) के नाम से नव स्थापित तंवर राज्य के तंवर कुलदेवी के रूप में सरूण्ड माता को पूजते है।

यह मंदिर अरावली श्रंखला की पहाड़ी पर स्थित है। मंदिर परिसर में उपलब्ध शिलालेख के आधार पर 650 फुट ऊँचा मंदिर एक छत्री (चबूतरा) में स्थित है। इस छत्री के चार दरवाजे हैं। उसके अन्दर माता की प्रतिमा विराजमान है। छत्री के बाद का मंदिर 7 भवनों वाला है। मंदिर का मुख्य मार्ग दक्षिण में व माता के निज मंदिर का द्वार पश्चिम में है। इस मंदिर में माता की 8 भुजावाला आदमकद स्वरुप प्रतिमा स्थित है। स्तम्भों व दिवारों पर वाम मार्गियों व तांत्रिकों की मूर्तियाँ की मौजुदगी इनका प्रभाव दर्शाती है। मंदिर में माता को पांडवो द्वारा स्थापित करने के साक्ष्य रूप में छत्री स्थित हैं। मंदिर की परिक्रमा में चामुंडा की मूर्ति है जो आज भी सुरापान करती है। मंदिर की छत्री, जो लाल पत्थर की है का वजन लगभग 5 टन का है। मंदिर पीली मिट्टी से बना हुआ है इसके बावजूद बारिश में इसमें कहीं भी पानी नहीं टपकता। मंदिर तक पहुँचने के लिए 282 सीढियाँ है। इनके मध्य में माता के पावन चरण के निशान हैं। यहाँ 52 भैरव व 64 योग्नियां है। सरुंड देवी की पहाड़ी से सोता नदी बहती है। जिसके पास एशिया प्रसिद्ध बावड़ी है जो बिना सीमेन्ट, चूने आदि के बनी हुई है। इसे द्वापर युग में पाण्डवों द्वारा 2500 चट्टानों से बनाई गई माना जाता है।

तंवरों के बडवा के अनुसार तंवरों की कुलदेवी चिलाय माता है। जाटू तंवरों ओर बड़वों की बही के अनुसार तंवरो की कुलदेवी ने चिल पक्षी का रूप धारण कर राव धोतजी के पुत्र जयरथ के पुत्र जाटू सिंह की बाल अवस्था में रक्षा की थी। जिसके कारण माँ जोगमाया को चिलाय माता कहा जाने लगा और कालांतर में जोगमाया माता को चिलाय माता पुकारा जाने लगा।

इतिहासकारों के अनुसार कुलदेवी का वाहन चिल पक्षी के होने कारण यह चिलाय माता कहलाई। राजस्थान के तंवर चिलाय माता को ही कुलदेवी मानते हैं। लेकिन चिलाय माता के नाम से कोई भी पुराना मंदिर नहीं मिलता। जिससे जाहिर होता है कि जोगमाया का नाम चिलाय माता सिर्फ तंवरावाटी में ही प्रचलित हुआ। बाँकीदास की ख्यात के अनुसार तोमरों की कुलदेवी चील है और इसकी पूजा खेजड़ी के पेड़ के साथ आसोज सुद अष्टमी को होती है। संभवतः देवी का वाहन चील होने के कारण चील, चिलक या चिलाय माता के नाम से संबोधित होने लगी हो, जिस प्रकार सरुंड गांव की पहाड़ी पर स्थित होने के कारण सरुंड व सारंग माता कहलाई।

चिलाय माता के दो मंदिरों का विवरण मिलता है। जाटू तंवर और पाटन के इतिहास के अनुसार 12 वीं शताब्दी में जाटू तंवरो ने खुडाना में चिलाय माता का मंदिर बनाया था और माता द्वारा मनसा (मनोकामना) पूर्ण करने के कारण उसे मनसादेवी के नाम से पुकारा जाने लगा।

एक और चिलाय माता मंदिर का विवरण मिलता है जो पाटन के राजाओं ने गुडगाँव में 14 वीं शताब्दी में बनवाया और ब्राह्मणों को माता की सेवा के लिए नियुक्त किया। लेकिन 17 वीं शताब्दी के बाद पाटन के राजा द्वारा माता के लिए सेवा जानी बन्द हो गयी थी। आज स्थानीय लोग चिलाय माता को शीतला माता समझ कर शीतला माता के रूप में पुजते है।

विभिन्न स्त्रोतों और पांडवो या तंवरो द्वारा बनवाये गये मंदिर से यही प्रतीत होता है कि तोमर (तंवर) की कुलदेवी माँ योगमाया है, जो बाद में योगेश्वरी कहलाई। योगमाया को ही बाद में विभिन्न कारणों से स्थानीय रूप में योगेश्वरी, जोगमाया, चिलाय माता, सरुंड माता, मनसा माता, शीतला माता आदि के नाम से पुकारा जाने लगा और आराधना की जाने लगी।

सोलंकी वंश की कुलदेवी क्षेमंकरी (खीमज) माता

सोलंकी वंश की कुलदेवी क्षेमार्च्या क्षेमंकारी देवी रही है। जिसे स्थानीय भाषाओं में क्षेमज, खीमज, खींवज आदि नामों से भी पुकारा व जाना जाता है। इस देवी का प्रसिद्ध व प्राचीन मंदिर राजस्थान के भीनमाल कस्बे से लगभग तीन किलोमीटर भीनमाल खारा मार्ग पर स्थित एक डेढ़ सौ फुट ऊँची पहाड़ी की शीर्ष छोटी पर बना हुआ है। मंदिर तक पहुँचने हेतु पक्की सीढियाँ बनी हुई है। भीनमाल की इस देवी को आदि देवी के नाम से भी जाना जाता है। भीनमाल के अतिरिक्त भी इस देवी के कई स्थानों पर प्राचीन मंदिर बने है, जिनमें नागौर जिले में डीडवाना से 33 किलोमीटर दूर कठौती गांव में, कोटा बूंदी रेल्वे स्टेशन के नजदीक इंद्रगढ़ में व सिरोही जालोर सीमा पर बसंतपुर नामक जगह पर जोधपुर के पास ओसियां आदि प्रसिद्ध है।

देवी उपासना करने वाले भक्तों को दृढविश्वास है कि खीमज माता की उपासना करने से माता जल, अग्नि, जंगली जानवरों, शत्रु, भूत–प्रेत आदि से रक्षा करती है और इन कारणों से होने वाले भय का निवारण करती है। इसी तरह के शुभ फल देने के चलते भक्तगण देवी माँ को शंभुकरी भी कहते है। दुर्गा सप्तशती के एक श्लोक अनुसार–"पन्थानाम सुपथाः रक्षेन्मार्ग श्रेमकरी" अर्थात् मार्गों की रक्षा कर पथ को सुपथ बनाने वाली देवी क्षेमकरी देवी दुर्गा का ही अवतार है।

जनश्रुतियों के अनुसार किसी समय उस क्षेत्र में उत्तमौजा नामक एक दैत्य रहता था। जो रात्री के समय बड़ा आतंक मचाता था। राहगीरों को लूटने, मारने के साथ ही वह स्थानीय निवासियों के पशुओं को मार डालता। जलाशयों में मरे हुए मवेशी डालकर पानी दूषित कर देता। पेड़ पौधों को उखाड़ फैंकता। उसके आतंक से क्षेत्रवासी आतंकित थे। उससे मुक्ति पाने हेतु क्षेत्र के निवासी ब्राह्मणों के साथ ऋषि गौतम के आश्रम में सहायता हेतु पहुंचे और उस दैत्य के आतंक से बचाने हेतु ऋषि गौतम से याचना की। ऋषि ने उनकी याचना, प्रार्थना पर सावित्री मंत्र से अग्नि प्रज्ज्वलित की। जिसमें से देवी क्षेमकरी प्रकट हुई। ऋषि गौतम की प्रार्थना पर देवी ने क्षेत्रवासियों को उस दैत्य के आतंक से मुक्ति दिलाने हेतु पहाड़ को उखाड़कर उस दैत्य उत्तमौजा के ऊपर रख दिया। कहा जाता है कि उस दैत्य को वरदान मिला हुआ था कि वह किसी अस्त्र–शस्त्र से नहीं मरेगा। अतः देवी ने उसे पहाड़ के नीचे दबा दिया। लेकिन क्षेत्रवासी इतने से संतुष्ट नहीं थे। उन्हें दैत्य की पहाड़ के नीचे से निकल आने आशंका थी। सो क्षेत्रवासियों ने देवी से प्रार्थना की कि वह उस पर्वत पर बैठ जाये, जहाँ वर्तमान में देवी का मंदिर बना हुआ है तथा उस पहाड़ी के नीचे दैत्य दबा हुआ है।

देवी की प्राचीन प्रतिमा के स्थान पर वर्तमान में जो प्रतिमा लगी है वह 1935 में

स्थापित की गई है। जो चार भुजाओं से युक्त है। इन भुजाओं में अमर ज्योति, चक्र, त्रिशूल तथा खांडा धारण किया हुआ है। मंदिर के सामने व पीछे विश्राम शाला बनी हुई है। मंदिर में नगाड़े रखे होने के साथ भारी घंटा लगा है। मंदिर का प्रवेश द्वार मध्यकालीन वास्तुकला से सुसज्जित भव्य व सुन्दर दिखाई देता है। मंदिर में स्थापित देवी प्रतिमा के दाईं और काला भैरव व गणेश जी तथा बाईं तरफ गोरा भैरूं और अम्बाजी की प्रतिमाएं स्थापित है। आसन पीठ के बीच में सूर्य भगवान विराजित है।

नागौर जिले के डीडवाना से 33 कि.मी. की दूरी पर कठौती गॉव में माता खीमज का एक मंदिर और बना है। यह मंदिर भी एक ऊँचे टीले पर निर्मित है ऐसा माना जाता है कि प्राचीन समय में यहां मंदिर था जो कालांतर में भूमिगत हो गया। वर्तमान मंदिर में माता की मूर्ति के स्तम्भ के रूप से मालुम चलता है कि यह मंदिर सन् 935 वर्ष पूर्व निर्मित हुआ था। मंदिर में स्तंभ उत्तकीर्ण माता की मूर्ति चतुर्भुज है। दाहिने हाथ में त्रिशूल एवं खड़ग है, तथा बायें हाथ में कमल एवं मुग्दर है, मूर्ति के पीछे पंचमुखी सर्प का छत्र है तथा त्रिशूल है।

क्षेंमकरी माता का एक मंदिर इंद्रगढ (कोटा–बूंदी) स्टेशन से 5 मील की दूरी पर भी बना है। यहां पर माता का विशाल मेला लगता है। क्षेंमकरी माता का अन्य मंदिर बसंतपुर के पास पहाडी पर है। बसंतपुर एक प्राचीन स्थान है। जिसका विशेष ऐतिहासिक महत्व है। सिरोही, जालोर और मेवाड़ की सीमा पर स्थित यह कस्बा पर्वत मालाओं से आवृत्त है। इस मंदिर का निर्माण विक्रम संवत 682 में हुआ था। इस मंदिर का जीर्णोद्वार सिरोही के देवड़ा शासकों द्वारा करवाया गया था। एक मंदिर भीलवाड़ा जिला के राजसमंद में भी है। राजस्थान से बाहर गुजरात के रूपनगर में भी माता का मंदिर होने की जानकारी मिली है।

परमार वंश की कुलदेवी सचियाय माता

सचियाय (सचिवाय) माता का भव्य मंदिर जोधपुर से लगभग 60 कि.मी. की दूरी पर उत्तर–पश्चिम दिशा की ओर ओसियॉ में स्थित है। इसीलिये इसे ओसियॉ माता भी कहा जाता है। ओसियां प्राचीनकाल से धार्मिक व कला का महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है। यहाँ पर 8 वीं व 12 वीं सदी के जैन व ब्राह्मणों के कलात्मक मंदिर व उत्कृष्ट शिल्प में बनी मूर्तियाँ विद्यमान है। खजुराहो और भुवनेश्वर के मंदिरों की भाँती महत्त्वपूर्ण ओसियां के मंदिरों में परमार क्षत्रिय राजवंश की कुलदेवी सचियाय माता जिसे ओसवाल समाज भी कुलदेवी के रूप में पूजता है, वास्तु व मूर्तिकला के उत्कृष्ट शिल्प के उदाहरण है। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार ओसियां नगर का प्राचीन काल में मेलपुरपट्टन नाम था। जो उपकेश या उकेश नाम से भी जाना जाता था। जनश्रुतियों के अनुसार यह नगर कभी ढुण्ढिमल नाम के एक साधू द्वारा शाप देने के चलते उजड़ गया था। जिसे उप्पलराज या उप्पलदेव परमार राजकुमार द्वारा पुनः बसाया गया। राजस्थान में ई. 400 के करीब राजस्थान के नागवंशियों के राज्यों पर परमारों ने अधिकार कर पश्चिमी राजस्थान में अपने राज्य स्थापित कर लिए थे। परमारों के मारवाड़ (पश्चिमी राजस्थान) में नौ दुर्ग क्रमशः मण्डोर, साम्भर, पूंगल, लोद्रवा, धाट, पारकर, किराड़ू, आबू व जालौर थे।

परमारों के इन्हीं राज्यों में से किराड़ू का एक राजकुमार उप्पलराज जिसे जैन ग्रन्थों में भीनमाल का राजकुमार बताया गया है, ने ओसियां नगर में ओसला लिया था अर्थात् शरण ली थी। इसी कारण इस स्थान का नाम ओसियां पड़ा। हालाँकि इतिहासकारों में ओसियां बसाने वाले के नाम को लेकर मतभेद है, पर इतना तय है कि राजकुमार उप्पलराज ओसियां आया और उसने यहाँ माता का मंदिर बनवाया था।

''प्राप्त शिलालेखों और ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि आबू के परमारों के मूल पुरुष का नाम धूम्रराज था। वि.सं. 1218 के किराड़ू से प्राप्त शिलालेख में आरम्भ सिन्धुराज से है। आबू का सिन्धुराज मालवा के सिन्धुराज से अलग था। सिन्धुराज का पुत्र उत्पलराज किराड़ू छोड़कर ओसियां जा बसा। वहां उसने ''सच्चियाय माता'' का मंदिर बनवाया।[1] इस संबंध में मुंहता नैणसी ने लिखा–''धरणीबराह का उत्पलराय किराड़ू छोड़कर ओसियां में जा बसा, सचियाय देवी प्रसन्न हुई मालवा दिया, ओसियां में देवल कराया।''[2] मुंहता नैणसी द्वारा धरणीबराह को उत्पलराय का भाई लिखने पर मुंहनोत नैणसी की ख्यात के संपादक ओझा जी उसी पृष्ठ के फूट नोट पर लिखते है– ''बसंतगढ़ से मिले हुआ सं. 1099 वि. के परमारों के लेख में पाया जाता है कि उत्पलराज धरणीबराह का भाई नहीं किन्तु परदादा था जिसका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी के आरम्भ में होना चाहिए।''

इतिहास पुस्तकों व प्रचलित मान्यताओं के आधार पर भीनमाल के शासक ने अपने छोटे पुत्र को भीनमाल का राज्य देने के पश्चात बड़े पुत्र उपलदे को देश निकाला दे दिया। जैन ग्रन्थों

के अनुसार उपलदे द्वारा भीनमाल छोड़ते समय उसके साथ एक उहड़ नामक वैश्य भी साथ हो लिया था, जिसके पास उस वक्त 99 लाख रूपये थे। यही उहड़ वैश्य आगे चलकर जैन धर्म में दीक्षित हुआ। उहड़ की आर्थिक मदद से उपलदे ने घोड़े आदि खरीदे। भीनमाल छोड़ने के बाद उपलदे ओसियां आया। उस वक्त ओसियां में देवी का एक चबूतरा बना था और उस पर देवी की चरण पादुकाएं रखी थी। रात्री के समय राजकुमार उपलदे देवी को प्रणाम कर चबूतरे पर सो गया। देवी ने प्रकट होकर राजकुमार का परिचय व वहां आने का अभिप्राय पूछा। तब राजकुमार उपलदे ने देवी से शरण मांगते हुए एक नगर बसाने की इच्छा व्यक्त की। देवी ने आशीर्वाद देते हुए निर्देश दिया कि सूर्य उदय होते ही वह जितनी दूर घोड़े को घुमा लेगा वह भूमि उसकी होगी। राजकुमार ने सुबह होते ही 48 कोस के क्षेत्र में घोड़ा घुमाया और तत्पश्चात नगर निर्माण हेतु मकान बनाने लगा लेकिन वह जो भी निर्माण करता वह थोड़ी देर में ध्वस्त हो जाता। इसी समस्या के समाधान हेतु जब उपलदे देवी के समक्ष उपस्थित हुआ तब देवी ने उसे पहले उसका मंदिर बनाने की आज्ञा दी, साथ ही मंदिर व नगर निर्माण हेतु धन व निर्माण सामग्री की उपलब्धता के बारे में जानकारी देते हुए उसे वह स्थान बताया जहाँ धन गड़ा था।

मंदिर निर्माण के पूर्ण होने पर राजकुमार ने फिर देवी की स्तुत्ति की और देवी के प्रकट होने पर मूर्ति सोने, चांदी या पत्थर की बनवाने हेतु निर्देश पूछे। तब देवी ने स्वतः प्रकट होने की बात बताते हुए निर्देश दिया कि उनके प्रकट होते समय किसी तरह का हल्ला मत करना। तीसरे दिन देवी स्वयं पहाड़ से प्रकट होने लगी, तब भयंकर गर्जना हुई, भूकंप आने लगा, घोड़े व अन्य पशु इधर–उधर भागने लगे तब राजकुमार उन्हें रोकने के लिए चिल्लाया, तब तक देवी आधी ही निकली थी सो उसका निकलना वहीं रुक गया। राजकुमार द्वारा निर्देश का उलंघन करने के चलते देवी कुपित भी हुई। लेकिन फिर उसे माफ करते हुए निर्देश दिया कि वह अपने रहने के लिए मंदिर के सामने ही अपना मकान बनवा ले। इस तरह देवी माता की कृपा से राजकुमार उपलदे नगर निर्माण में सफल हुए। पर समस्या थी वहां रहने के लिए लोग नहीं थे, सो बस्ती कैसे बसे। बस्ती बसाने हेतु राजकुमार भीनमाल गया और वहां से 18000 गाड़ियों में ओसियां में बसने के इच्छुक व्यक्तियों व उनके परिजनों को सामान के साथ भरकर लाया। इस तरह उजड़े ओसियां नगर का पुनर्निर्माण हुआ।

देवी से जुड़ें एक और प्रकरण पर राजस्थान के प्रथम इतिहासकार मुंहनोत नैणसी बाघ नामक परमार की गोयंद परिहार द्वारा हत्या के बाद बाघ के बैरिसिंह नामक पुत्र द्वारा परिहारों से बदला लेने की घटना का जिक्र करते हुए अपनी ख्यात में लिखते है– ''बैरिसिंह ने पयान करते समय माता की मानता मानी थी कि जो पड़िहारों पर फतह पाऊं तो कमल पूजा करूँगा। माता सचियाय ने स्वप्न में आकर आज्ञा दी कि कल काले वस्त्र पहने काली टोपी सिर पर धरे, एक गाड़ी में, जिसके काली खोली (गिलाफ) और काले ही बैल जुते होंगे, बैठा हुआ एक आदमी मिलेगा और कहेगा कि इस मार्ग से मत जा, परन्तु तूं उसे मार कर चले जाना। प्रभात होते ही बैरसी मुन्धियाड़ (पड़िहारों का एक ठिकाना) पर चढ़ा। सामने उसी भेष का पुरुष मिला। उसको मार कर फिर मुन्धियाड़ जा मारा और बहुत से पड़िहारों का प्राण लेकर बाप का बैर लिया। कार्य सिद्ध होने उपरांत ओसियां आया और माता के मंदिर का द्वार बंद कर एकांत में कमल पूजा करने को खड़ग उठाया, तब देवी ने हाथ कर समझाया कि

मैं तेरी सेवा से प्रसन्न हुई और तेरा मस्तक तुझे दिया, इसके बदले सुवर्ण का सिर बनवाकर चढ़ा देना। फिर अपने हाथ से शंख बैरसिंह को देकर फरमाया कि इस शंख को बजाकर सांखला प्रसिद्ध हो।''[3]

सचियाय माता जिसे सचिवाय व सच्चिका माता के नाम से जाना जाता है के मंदिर से प्राप्त संवत 1234, 1236 व 1245 के शिलालेख मंदिर की प्राचीनता, पौराणिकता व मंदिर में पूजा अर्चना की विधियों पर जानकारी देते है। चण्डिका, शीतला और क्षेमकरी रूपों में माता व क्षेत्रपाल की प्रतिमाओं की उपस्थिति वाले इस मंदिर में पहुँचने हेतु कलात्मक तोरणद्वारों की श्रृंखला वाला एक सीढ़ीदार रास्ता बना है। रास्ते में बने ये तोरण द्वार विभिन्न समय में विभिन्न देवी भक्तों द्वारा निर्मित कराये गये है।

क्षत्रियों के साथ ही जैन समुदाय भी देवी को अपनी कुलदेवी के रूप में मानता और उपासना करता है। अतः यहाँ सात्विक रूप से ही चढ़ावा चढ़ता है। चढ़ावे में खोपरा व खाजा जिसे करड़ मरड़ कहा जाता है। चढ़ाया जाता है।

1– राजपूत शाखाओं का इतिहास : पृ. 271, देवीसिंह मंडावा
2– मुंहनोत नैणसी की ख्यात : पृ. 222
3– मुंहनोत नैणसी की ख्यात : पृ. 224

गौड़ वंश की कुलदेवी महाकाली माता

महाकाली माता का स्मरण होते ही मन मस्तिष्क के दृश्यपटल पर शव पर आरूढ़, तीक्षण दृष्टा, शत्रु संहार करने वाले योद्धा के रूप में, शत्रु पक्ष को नष्ट करते समय का अट्टहास, भयावह स्वरूप, एक हाथ में खड़ग, एक में नरमुंड, एक में अभयमुद्रा तो एक हाथ में वर, गले में मुंडमाला, शमशान सा दृश्य स्वरूप वाली छवि स्वतः उभर आती है। प्राचीन काल से शक्ति की उपासना की प्रतीक महाकाली की हिन्दू कोष में तीन स्वरूपों की व्याख्या की गई है। इन तीन स्वरूपों काली, भद्रकाली एवं कालिका स्वरूप वाली माता भगवती महाशक्ति विद्या रूप में मुक्ति और अविद्या रूप में प्राणियों के मोह के कारण विद्यमान है।

पुराणों के अनुसार, पिता दक्ष के यज्ञ के दौरान अपमानित हुई सती ने योग बल से अपने प्राण त्याग दिए थे। सती की मृत्यु से व्यथित भगवान शिव उनके मृत शरीर को लेकर तांडव करते हुए ब्रह्मांड में भटकते रहे। माता के अंग जहां–जहां गिरे, वहीं शक्तिपीठ बन गये। कालिकापुराण के अनुसार– "एक बार देवताओं ने महामाया को प्रसन्न करने के लिए हिमालय पर स्थित मतडग मुनि के आश्रम में जाकर महामाया की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने मतडगबनिता की मूर्ति बनकर देवताओं को दर्शन दिया और पूछा कि तुम लोग किसकी स्तुति कर रहे हो। उसी वक्त भगवती के श्री विग्रह से काले पहाड़ के समान वर्णावाली दिव्य नारी का प्राकट्य हुआ और उन्होंने स्वयं ही देवताओं की ओर से उत्तर दिया कि ये देवता उसकी ही स्तुति कर रहे है। शुम्भ और निशुम्भ नामक दो असुर देवताओं को पीड़ित कर रहे है अतः उनके वध हेतु देवतागण मेरी स्तुति कर रहे है। वह काजल समान होने से काली कहलाई। इसी काली कलिका को ऋषि लोग उग्रतारा कहते है। क्योंकि वह भय से सदा भक्तों का त्राण करती है। कालिका जगत की माता शोक दुःख विनाशिनी और काल में महापातक नाशिनी है। कालिका जगतां माता दुःख विनाशनी है। विशेषतः कलियुगे महापातक हारिणी। कलियुग में काली और सर्पणी जागती रहती है, काली कृष्ण इस युग में प्रशस्त है, अतः इनकी पूजा श्रेयस्कर है।[1]

गौड़ क्षत्रिय राजवंश शक्ति की प्रतीक महाकाली के उपासक रहे हैं। काली कलिका, महाकालिका का समिश्रित रूप महाकाली को गौड़ क्षत्रिय अपनी कुलदेवी मानते है। विद्या स्वरूपा महाकाली के राजस्थान के अनेक दर्शनीय मंदिरों में सिरोही स्थित देवी का मंदिर विशेष आस्था का केंद्र रहा है। महाराव अखैराज द्वारा निर्मित कालका जलाशय के किनारे स्थित इस मंदिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित है वह सिरोही नरेश महाराव लाखा पावागढ़ (गुजरात) से लाये थे। विशाल वट वृक्ष के नीचे स्थित इस मंदिर के पास मीठे पानी की बावड़ी विद्यमान है तथा पास ही दुर्जनेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर है। पावागढ़ का पौराणिक और ऐतिहासिक महत्व है। बताया जाता है कि यह मंदिर अयोध्या के राजा भगवान श्री रामचंद्रजी के समय का है। इस मंदिर को एक जमाने में शत्रुंजय मंदिर कहा जाता था। माघ महीने के शुक्ल

पक्ष में यहां मेला लगता है।

मान्यता है कि भगवान राम, उनके बेटे लव और कुश के अलावा बहुत से बौद्ध भिक्षुओं ने यहां मोक्ष प्राप्त किया था। माना जाता है कि सती के दाहिने पैर का अंगूठा गिरने के कारण इस जगह का नाम पावागढ़ हुआ। इसीलिए यह स्थल बेहद पूजनीय और पवित्र माना जाता है। यहां की खास बात यह है कि यहां दक्षिणमुखी काली मां की मूर्ति है, जिसकी तांत्रिक पूजा की जाती है। इस पहाड़ी को गुरु विश्वामित्र से भी जोड़ा जाता है। कहते हैं कि गुरु विश्वामित्र ने यहां मां काली की तपस्या की थी। यह भी माना जाता है कि मां काली की मूर्ति को विश्वामित्र ने ही स्थापित किया था। यहां बहने वाली नदी का नामकरण भी उन्हीं के नाम पर विश्वामित्री रखा गया है।

गर्भग्रह में अष्ट भूजाओं वाली महाकाली व अंतरालय में दस भुजाओं वाली कालिका की प्रतिमा की स्थापना वाला भगवान विष्णु को समर्पित एक प्राचीन मंदिर झालावाड़ में भी स्थित है। इस मंदिर में विष्णु की मूल प्रतिमा दरवाजे के सामने स्थापित है। वीरों की तीर्थस्थली चितौड़गढ़ के किले में भी कालिका माता का प्राचीन काल में निर्मित एक भव्य विशाल मंदिर है। अनुमानतः 8 वीं शताब्दी में बना यह मंदिर वास्तुकला का अद्भूत दर्शनीय नमूना है। इस मंदिर के बारे में दीनानाथ दूबे अपनी पुस्तक "राजस्थान के दुर्ग में लिखते है– "यहाँ कालिकामाता मंदिर सबसे प्राचीन है। इसका निर्माण मोरीवंश के शासक मोरी ने कराया था। यहाँ 9 वीं शताब्दी का एक शिलालेख भी है।" डा. विक्रमसिंह भाटी के अनुसार– "वस्तुतः ये सूर्य मंदिर था। इस मंदिर की मुख्य सूर्य प्रतिमा को मुस्लिम आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया था अनन्तर वहां कालिका माता मूर्ति स्थापित की गई। जिससे यह कालिका माता मंदिर कहलाने लगा।''

जयपुर के पास निवाई व झालाना डूंगरी पर भी काली माता के प्राचीन मंदिर जन आस्था के केंद्र है। राजस्थान में कालिका माता के छोटे–बड़े बहुत सारे मंदिर है जहाँ भक्तगण माता की पूजा–अर्चना, उपासना कर माता को प्रसन्न कर अपना जीवन सुखमय बनाने की कामना करते है। राजस्थान ही क्यों कालिका माता के देश की राजधानी दिल्ली सहित देश के हर कौने में माता के मंदिर है जो श्रद्धालुओं की आस्था के केंद्र है।

उज्जैन के कालीघाट स्थित कालिका माता का प्राचीन मंदिर हैं, जिसे गढ़ कालिका के नाम से जाना जाता है। कालजयी कवि कालिदास गढ़ कालिका देवी के उपासक थे। यहां प्रत्येक वर्ष कालिदास समारोह के आयोजन के पूर्व मां कालिका की आराधना की जाती है। गढ़ कालिका के मंदिर में मां कालिका के दर्शन के लिए रोज हजारों भक्तों की भीड़ जुटती है। तांत्रिकों की देवी कालिका के इस चमत्कारिक मंदिर की प्राचीनता के विषय में कोई नहीं जानता, फिर भी माना जाता है कि इसकी स्थापना महाभारत काल में हुई थी। बाद में इस प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार सम्राट हर्षवर्धन द्वारा किए जाने का उल्लेख मिलता है।

कालिका के प्राचीन मंदिर, गोवा के नार्थ गोवा में महामाया, कर्नाटक के बेलगाम में, पंजाब के चंडीगढ़ में और कश्मीर में भी स्थित है। आदि शक्ति महाकाली का महत्व ऐतिहासिक, पौराणिक मान्यताओं सहित अद्भुत चमत्कारिक किवदंतियों व गाथाओं को अपने आप में समेटे हुये है। कहा जाता है कि महिषासुर व चण्डमुण्ड सहित तमाम भयंकर शुम्भ निशुम्भ आदि राक्षसों का वध करने के बाद भी महाकाली का यह रौद्र रूप शांत नहीं हुआ और इस रूप

ने महाविकराल धधकती महाभयानक ज्वाला का रूप धारण कर तांडव मचा दिया था।
उत्तराखण्ड के गंगोलीहाट जनपद मुख्यालय से लगभग 99 किमी० की दूरी पर मन को लुभाने वाली नगरी गंगोलीहाट है। गंगोलीहाट की सौन्दर्य से परिपूर्ण छटाओं के मध्य यहां से लगभग 1 किमी० दूरी पर अत्यन्त ही प्राचीन माँ भगवती महाकाली के अद्भुत मंदिर को चाहे धार्मिक दृष्टि से देखें या पौराणिक दृष्टि से हर स्थिति में यह आगन्तुकों का मन मोहने में पूर्णतया सक्षम है।

पड़िहार वंश की कुलदेवी चामुण्डा माता

दैत्य शुम्भ निशुम्भ सेनापति चन्ड और मुण्ड का नाश करने से माता कालिका चामुण्डा के नाम से प्रसिद्ध हुई। माता कालिका को पुराणों के अनुसार शक्ति की प्रतीक माता दुर्गा का सातवाँ अवतार माना जाता है तथा चामुण्डा को भगवती दुर्गा का आठवां अवतार, इसलिए माता चामुण्डा को अष्टमात्रिका, अरण्यवासिनी गाजन तथा अम्बरोहिया भी कहा जाता है।[1] देवी चामुण्डा के परमभक्त पड़िहार नाहड़राव गाजन के वंशज घंटियाला गांव निवासी खाखू परिहार माता चामुण्डा की कुलदेवी के रूप में पूजा, अर्चना, आराधना करने चामुण्डा गांव जहाँ देवी का मंदिर था आते थे। चामुण्डा गांव जोधपुर से 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। जहाँ एक ऊँची पहाड़ी पर माता का मंदिर बना है।

इस मंदिर में प्रतिष्ठापित प्रतिमा के बारे में मान्यता है कि यह प्रतिमा स्वतः प्रकट है। मंदिर के अग्रभाग में यज्ञ कुण्ड बना है। अद्‌भुत परिक्रमा स्थल वाले इस मंदिर में माता चामुण्डा की शिलारुपी प्रतिमा अपने पांव पर खड़े होकर भक्तों को आशीर्वाद देती नजर आती है। अन्य क्षत्रिय वंशों की तरह मंडोवर (मंडोर) के पूर्व पड़िहार वंश के शासकों ने भी शक्ति की प्रतीक के रूप में माता चामुण्डा की कुलदेवी के रूप में आराधना की और अपनी राजधानी मंडोर में माता की प्रतिमा की स्थापना की।

मंडोर के परिहार शासक राव चुंडा राठौड़ को राज्य व शासन का भार सौंप कर निश्चिन्त हो चले गए। राव चुंडा राठौड़ मंडोर का राज्य मिलने के पहले से ही माता चामुण्डा के भक्त थे। अपने काका संत शासक रावल मल्लिनाथ जी के यहाँ रहते हुए राव चुंडा अक्सर चामुण्डा गांव स्थित माता चामुण्डा मंदिर में दर्शनार्थ आते रहते थे। लोक मान्यता है कि राव चुंडा को एक बार माता चामुण्डा ने सपने में दर्शन देकर बताया कि– सुबह एक बंजारा घोड़ों के काफिले के साथ उधर से होकर निकलेगा। घोड़ों की पीठ पर सोने की ईंट लदी होगी, जो तेरे भाग्य में है। प्रातःकाल राव चुंडा ने बंजारे को मारकर सोने की ईंट सहित घोड़ों को हस्तगत कर लिया और अपनी सैन्य शक्ति बढाई। आगे चलकर ईंदा राणा उगमसी की पोत्री का विवाह चुंडा के साथ हुआ और दहेज में मंडोर का किला मिल गया। जहाँ चुंडा ने अपनी इष्टदेवी माता चामुण्डा का पड़िहारों द्वारा प्रतिष्ठापित स्थल पर मंदिर का निर्माण करवाया।

राव चुंडा के पुत्र राव जोधा ने सुरक्षा की दृष्टि से मेहरानगढ़ के नाम से दुर्ग बनाकर जोधपुर नगर की स्थापना की। तब मारवाड़ की रक्षा करने वाली अपने पिता की ईष्टदेवी व परिहारों की कुलदेवी को अपनी ईष्टदेवी स्वीकार करते हुए मंडोर से माता की प्रतिमा लाकर जोधपुर किले में प्रतिष्ठित करवाया।

राठौड़ों की कुलदेवी मूलतः नागणेचियां माता है पर राव जोधा ने माता चामुण्डा को ईष्टदेवी के रूप में स्वीकार कर अपने वंश, राज्य की संरक्षिका बनाकर सम्पूर्ण सुरक्षा का भार सौंपा, जिसे माता पिछले 550 वर्षों से निभा रही है–

गढ़ जोधाणे ऊपरै, बैठी पंख पसार।
अम्बा थारो आसरो, तूं हीज है रखवार।।
चावण्ड थारी गोद में खेल रयो जोधाण।
तूं हीज राखजै, थारा टाबर जाण।।

वि.स. 1914 भाद्रपद कृष्ण पंचम (9 अगस्त,1857) को दुर्ग स्थित गोपाल पोल के पास भाटी गोविन्ददास की हवेली के निकट बिजली पड़ी, जिससे बारूद का कोठार (जिसमें 80 हजार मण बारूद था) में विस्फोट हुआ[2], ख्यात में विस्फोट का कारण गणपतलाल द्वारा बीड़ी जलाने के लिए माजिस की तिल्ली जलाने से होना लिखा है। विस्फोट का कारण कुछ भी रहा हो पर इस विस्फोट से राव जोधा कालीन मंदिर क्षत–विक्षत हो गया परन्तु मूर्ति सुरक्षित रही। इस भयंकर विस्फोट में भारी तबाही हुई, लगभग 300 व्यक्तियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। विस्फोट से किले सहित नगर के कई निर्माण धराशायी हो गए थे। कहा जाता है कि विस्फोट से चौपासनी गांव तक पत्थर तक गिरे थे। इस विस्फोट में मृतकों की भारी संख्या के चलते उनके अंतिम संस्कार हेतु लकड़ियाँ तक कम पड़ गई थी। इतनी भारी मात्रा में मौतें होने के कारण तत्कालीन महाराजा तख्तसिंह जी ने ज्योतिषियों की सलाह पर शांति हवन कराया तत्पश्चात वि.स. 1914 सुद आठम बैसाख को मंदिर का पुनः निर्माण कराया। प्रत्येक वर्ष भादवा सुद तेरस को जोधपुर किले में स्थित इस माता चामुण्डा के मंदिर का जीर्णोद्धार दिवस मनाया जाता है।

राव जोधा के समय जोधपुर की जनसँख्या नगण्य थी, पर आज जोधपुर नगर भी जनसँख्या विस्फोट से प्रभावित है। हालाँकि मंदिर पूर्व राजपरिवार की निजी सम्पत्ति है पर नवरात्रि व कई अवसरों पर जनता के दर्शनार्थ खोला जाता है। तब काफी भीड़ बढ़ जाती है जिसकी सुविधा के लिए व कम पड़ते स्थान की पूर्ति के लिए वर्तमान पूर्व महाराजा गजसिंह जी ने 1993 में मंदिर चौक से एक नया ढलान बनवाया। जिससे दर्शनार्थियों के मंदिर में आने–जाने के मार्ग प्रथक–प्रथक हो गए। नवरात्रि के समय दर्शनार्थियों की भारी भीड़ को देखते हुए दर्शनार्थियों की सुविधा के लिए पूर्व राजपरिवार व मेहरानगढ़ ट्रस्ट द्वारा काफी प्रबंध किये जाते है फिर भी अनुशासनहीन लोगों के कृत्य से 30 सितम्बर 2008 में भगदड़ मचने के बाद मंदिर में फिर एक दुर्घटना घट चुकी। जिसमें 216 लोगों की जानें चली गई थी और करीब 150 लोग घायल हुए थे। तत्कालीन मुख्यमंत्री वसुधंरा राजे ने इस हादसे की न्यायिक जांच कराने की घोषणा की थी व इसकी जांच हेतु उच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश जसराज चौपड़ा की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया था। हादसे के वक्त दर्शनार्थियों की सुरक्षा व्यवस्था के लिए एक पुलिस उपाधीक्षक, छह निरीक्षक सहित लगभग 600 पुलिसकर्मी तैनात किए गए थे। बावजूद कुछ अनुशासनहीन युवकों द्वारा पहले दर्शन करने की होड़ में धक्का–मुक्की के कारण उक्त दुखान्तिका घट गई थी।

1–डा. विक्रमसिंह भाटी, राजस्थान की कुलदेवियां : पृष्ट–67
2–डा. विक्रमसिंह भाटी, राजस्थान की कुलदेवियां : पृष्ट–64

पुण्डीर व दाहीमा क्षत्रियों की कुलदेवी दधिमती माता

भारतीय स्थापत्यकला एवं मूर्तिकला का गौरव, प्रतिहारकालीन मंदिर स्थापत्य मूर्तिकला का सुन्दर उदाहरण, प्राचीन भारतीय वास्तुकला की उत्कृष्ट कला का प्रतिनिधित्व करता, दधिमती माता का मंदिर राजस्थान के नागौर जिले के जायल कस्बे के पास गोठ मांगलोद गांव में स्थित है। महामारू शैली का श्वेत पाषाण से निर्मित शिखरबद्ध यह मंदिर पूर्वाभिमुखी है। डा. राघवेन्द्र सिंह मनोहर के अनुसार–"वेदी की सादगी जंघा भाग की रथिकाओं में देवी देवताओं की मूर्तियाँ, मध्य भाग में रामायण दृश्यावली एवं शिखर प्रतिहारकालीन परम्परा के अनुरूप है। चार बड़े चौक वाला यह मंदिर भव्य व विशाल है।

मंदिर का जंघा भाग पंचरथ है, जिसकी मध्यवर्ती प्रधान ताक में पश्चिम की ओर आसनस्थ चार भुजाओं वाली दुर्गा, उतर की ओर तपस्यारत चार भुजाओं वाली पार्वती तथा दक्षिण की ओर आसनस्थ आठ भुजाओं वाली गणपति प्रतिमा विद्यमान है। इसके समीप स्थानक दिकपाल वाहनों सहित अंकित है यथा मेषवाहना अग्नि, महिषवाहना यम, नरवाहना नैऋत्य तथा मकरवाहना वरुण।"

मंदिर में रामायण की घटनाओं का चित्रों के माध्यम से मनोहारी चित्रण किया है। डा. राघवेन्द्र सिंह मनोहर के अनुसार–"चित्रों में राम का चित्रण सामान्य पुरुष रूप में, ब्रह्मचारी वेश में, जटामुकुट धारण किये, हाथ में धनुष, पीठ पर तरकश बांधे प्रत्यालीढ़ मुद्रा में किया गया है, अवतार के दिव्य रूप में नहीं। नाटकीयता को महत्त्व देने के लिए उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं को चुना गया है, जो आश्चर्य एवं विस्मय का भाव उत्पन्न करती है। हनुमान का चित्र का वानर के रूप में किया गया है। इन अर्धचित्रों से यह सिद्ध होता है कि राजस्थान के शिल्पियों में बाल्मीकि रामायण लोकप्रिय थी तथा भारत का यह भू–भाग रामायण के कथानक से जुड़ा हुआ था, जिसका उल्लेख रामायण के इस श्लोक में हुआ है–

आदौ रामतापोवनादिगमनं हत्या मृगं कांचनम।
वैदेहि हरणं जटायुमरणं सुग्रीव संभाषणम।।
वाली निर्दलनं समुद्रतरणं लंकापुरी दाहनम।
पश्चाद्रावण कुम्भकर्णहननं एतद्धि रामायणम ।।"

देवी के इस मंदिर में रामायण के इन चित्रों में राम, लक्ष्मण, सीता वन गमन से शुरू होकर, मारीच वध, कुंभकर्ण, रावण वध, वानरों द्वारा समुद्र पर सेतु बांधने आदि कई घटनाओं के सुन्दर चित्रों का समायोजन किया गया है जो दर्शनीय है।

मंदिर निर्माण की प्राचीनता के बारे रामकरण आसोपा ने इसे गुप्तकालीन मानते हुए 608 ई. में निर्माण माना है, जबकि डा. राघवेन्द्र सिंह मनोहर आदि इतिहासकार इस मंदिर का निर्माण प्रतिहार नरेश भोजदेव प्रथम (836–892 ई.) के समकालीन मानते है।

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार ''इस मंदिर के आस–पास का प्रदेश प्राचीनकाल में दधिमती (दाहिमा) क्षेत्र कहलाता था। उस क्षेत्र से निकले हुए विभिन्न जातियों के लोग, यथा ब्राह्मण, राजपूत, जाट आदि दाहिमे ब्राह्मण, दाहिमे राजपूत, दाहिमे जाट कहलाये, जैसे कि श्रीमाल (भीलमाल) नगर के नाम से श्रीमाली ब्राह्मण, श्री महाजन आदि।''

ब्राह्मण, जाट व अन्य जातियों के अलावा दाहिमा व पुण्डीर राजपूत दधिमती माता को अपनी कुलदेवी मानते हुए इसकी उपासना करते है। चूँकि दाहिमा राजपूत इसी क्षेत्र से निकले होने के कारण दाहिमा कहलाये। हालाँकि इस क्षेत्र में दाहिमा राजपूतों का कभी कोई बड़ा राज्य प्राचीनकाल में भी नहीं रहा। वे पृथ्वीराज चौहान तृतीय के सामंतों में थे और पृथ्वीराज के दरबार में दाहिमा राजपूतों का बड़ा महत्व व प्रभाव था। कुं. देवीसिंह मण्डावा के अनुसार ''कैमास दाहिमा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय से ही चौहान साम्राज्य का प्रधानमंत्री रहा था। सोमेश्वर ने उसे नागौर का क्षेत्र जागीर में दिया था।'' सोमेश्वर की मृत्यु के समय पृथ्वीराज बालक थे। अतः उनकी माता कर्पूरी देवी राज्य का प्रशासन देखती थी। जिसने भी कैमास दाहिमा पर भरोसा करते हुए उसे प्रधानमंत्री रखा। कैमास दाहिमा ने गौरी का घग्घर नदी के पास मुकाबला किया था, जिसमें वह घायल हुआ। उसकी मृत्यु के बाद पृथ्वीराज ने उसके पुत्र को प्रधानमंत्री बनाया और हांसी की जागीर दी थी। दाहिमा राजपूतों के अलावा पुण्डीर राजपूत भी दधिमता माता को कुलदेवी मानते है और माता की पूजा–आराधना–उपासना करते है।

अन्य मंदिरों की भांति माता के इस मंदिर से भी चमत्कार की कई दंतकथाएँ जुड़ी है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार विकटासुर नाम का दैत्य संसार के समस्त पदार्थों का सारतत्व चुराकर दधिसागर में जा छुपा था, तब देवताओं की प्रार्थना पर स्वयं आदिशक्ति ने अवतरित होकर उस दैत्य का वध किया और सब पदार्थ पुनः सत्वयुक्त हुए। दधिसागर को मथने के कारण देवी का नाम दधिमती पड़ा। अन्य जनश्रुतियों के अनुसार कपालपीठ कहलाने वाला माता का यह मंदिर स्वतः भूगर्भ से प्रकट हुआ है। तो एक अन्य जनश्रुति के अनुसार प्राचीनकाल में राजा मान्धाता द्वारा माघ शुक्ल सप्तमी को किये गए एक यज्ञ के समय यज्ञकुण्ड से पैदा होने की किवदंती प्रचलित है।

वर्तमान में मंदिर की सम्पूर्ण व्यवस्था मंदिर प्रन्यास व अखिल भारतीय दाधीच ब्राह्मण महासभा द्वारा की जाती है। दाधीच ब्राह्मण महासभा द्वारा ही मंदिर का नवीनीकरण एवं जीर्णोद्धार किया गया व बरामदों युक्त अनेक कमरों का निर्माण कराया गया है। चैत्र और आश्विन के नवरात्रों में यहाँ मेलों का आयोजन होता है, जिनमें बड़ी संख्या में माता के भक्त, श्रद्धालु दर्शनार्थ यहाँ आते है।

जायल कस्बे के नजदीक इस मंदिर तक पहुंचने के लिए विभिन्न स्थानों से रेल, बस, टैक्सी आदि से आसानी से पहुंचा जा सकता है। जयपुर, जोधपुर, अजमेर, बीकानेर, दिल्ली, नागौर से डेगाना, छोटी खाटु आदि से रेल द्वारा और उसके बाद टैक्सी या बस द्वारा पहुंचा जा सकता है।

दहिया वंश की कुलदेवी कैवाय माता

आदि काल से शक्ति के उपासक क्षत्रियों के विभिन्न वंशों ने शक्ति की प्रतीक माँ दुर्गा की विभिन्न नामों से उपासना, आराधना की। भारतीय संस्कृति की संजीवनी रहे इसी शक्तिधर्म की परम्परा का निर्वाह करते हुए क्षत्रियों के 36 राजवंशों में शुमार दहिया क्षत्रिय राजवंश ने शक्तिरूपा माँ कैवाय माता को कुलदेवी के रूप में स्वीकार किया और माँ की कैवाय माता के रूप में पूजा–अर्चना, उपासना की।

दहिया क्षत्रिय राजवंश के बारे माना जाता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब में सतलज नदी के पास इस वंश का गणराज्य मौजूद था। इतिहासकार देवीसिंह मंडावा के अनुसार "वहां इन्होंने एक किला बनवाया, जिसका नाम शाहिल था। जिसके कारण इनकी एक शाखा 'शाहिल" कहलाई। मानते है कि सिकन्दर के समय ये द्राहिक व द्राभि नाम से प्रसिद्ध थे, फिर वहां से ये दक्षिण गये।"

दक्षिण के अलावा राजस्थान में भी परबतसर, मारोठ, नैणवा–बूंदी इलाके, जालौर, सांचोर, नाडोल, अजमेर जिले में सावर, घटियाली, मारवाड़ में हरसौर आदि कई क्षेत्रों में दहियाओं का राज्य था।

राजस्थान के नागौर जिले की वर्तमान परबतसर तहसील जिस पर कभी दहिया राजवंश का शासन था। इसी परबतसर कस्बे से छः किलोमीटर दूर किनसरिया नामक गांव की पहाड़ी पर, परबतसर के दहिया वंश के शासक राणा चच्च ने वि.सं. 1056 (999 ई.) के लगभग अपनी कुलदेवी कैवाय माता की प्रतिमा स्थापित कर देवालय बनवाया था। दधीचिक वंश के शासक चच्चदेव सॉभर के चौहान राजा दुर्लभराज (सिंहराज का पुत्र) के सामंत थे। किनसरिया गांव में वि.स. 1056 बैसाख सुदि 3 (999 ई.) का राणा चच्च का एक शिलालेख मिला है जिस पर किनसरिया गांव में इस भवानी मंदिर के निर्माण का उल्लेख है।

ऊँची पहाड़ी पर बना कैवाय माता का देवालय सदियों से श्रद्धालुओं की मनोकामना पूर्ण करने व जन–आस्था का केंद्र है। देवालय के खड़ी पहाड़ी पर होने के चलते दुष्कर चढाई से श्रद्धालुओं को निजात दिलवाने के लिए पक्की सीढ़िया बनवाई है। सर्पिलाकार मार्ग पर बनी 1141 सीढियों का प्रयोग कर भक्तगण अपनी आराध्य देवी के दर्शन करने आसानी से ऊँची पहाड़ी पर चढ़ कर दर्शन लाभ लेते है। प्राकृतिक सौन्दर्य की भव्यता लिये मंदिर के निमित्त छः हजार बीघा भूमि पर ओरण (अभ्यारण्य) छोड़ा हुआ है। जो एक और माता की और से पशुओं के लिये अपनी क्षुधा मिटाने के साथ स्वतंत्र रूप से विचरण करने हेतु चारागाह रूपी सौगात है, वहीं वर्षा ऋतु में छाने वाली हरियाली माता के दर्शन करने आने वाले भक्तगणों को नयनाभिराम मनोरम दृश्य उपलब्ध कराती है।

मुख्य देवालय में उत्तराभिमुख श्वेत संगमरमर से निर्मित कैवाय माता (ब्राह्माणी) की भव्य

कलात्मक प्रतिमा प्रतिष्ठित है। उसके समीप वाम पार्श्व में माता भवानी (रुद्राणी) की प्रतिमा स्थापित है। मंदिर की स्थापना के 713 वर्ष पश्चात अर्थात् वि.सं. 1768 (1712 ई.) में जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह द्वारा माँ भवानी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई। स्थापत्य की परिपक्व शैली में चतुर्भुज योजनान्तर्गत बने मंदिर की छत दो भागों में विभक्त है। चार सुदृढ़ खंभों पर 8 फूट ऊँचा गर्भगृह बना है। जहाँ पुजारी सहित भक्तगण पूजा अर्चना करते है। मंदिर के बाहर काला एवं गोरा भैरव की प्रतिमाएं भी लगी है।

दहिया क्षत्रियों द्वारा निर्मित यह देवी मंदिर सभी जाति व समुदायों के लोगों की आस्था का केंद्र है। विभिन्न जातियों के लोग कैवाय माता की अपनी कुलदेवी के रूप में पूजा–उपासना कर अपने कल्याण की कामना रखते है। कैवाय माता को अपनी इष्टदेवी मानने वाले श्रद्धालुओं के परिवार में वंश वृद्धि के समय नवजात शिशु को माता के चरणों में लेटा कर उसकी दीर्घायु की कामना करते हुए जडुला उतराने की रस्म अदा करते है। यही नहीं नवविवाहित जोड़े भी माता के मंदिर फेरी (परिक्रमा) लगाकर पूजा–अर्चना कर सुखी दाम्पत्य जीवन की मन्नत मांगने आते है।

मंदिर को लेकर कई लोकमान्यताएं भी प्रचलित है, इन्हीं मान्यताओं के अनुसार मंदिर परिसर में सफेद कबूतर का दिखना शुभ माना जाता है। जिस श्रद्धालु को मंदिर परिसर में सफेद कबूतर नजर आ जाता है वह अपने आपको धन्य समझता है। नवरात्रा के समय मंदिर प्रांगण से आकाश में सात तारों का एक ही सीध में दिखना भी लाभदायक माना जाता है। इन्हीं मान्यताओं में एक मान्यता है कि मंदिर का जलता हुआ दीपक रात्री में मंदिर से निकलकर आस–पास की पहाड़ियों में परिक्रमा लगाकर पुनः मंदिर में आता है। भक्तों की मान्यता है कि दीपक को परिक्रमा करते देखना साक्षात देवी के दर्शन करना है।

डा. विक्रमसिंह भाटी के अनुसार (राजस्थान की कुलदेवियांय पृ. 95)– पुरातत्व की दृष्टि से किनसरिया धाम का अलग महत्व रहा है। 10 वीं से 16 वीं शताब्दी तक के महत्त्वपूर्ण शिलालेखों का यहाँ मिलना इतिहास की धारा को गतिमय बनाने में सहायक सिद्ध होगा। किनसरिया धाम की शिलाएँ लंबे समय से मौसम की हर मार सहते और उत्कीर्ण लेखों पर छेड़छाड़ होने के बावजूद मूक रूप से खड़ी है और लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर, अपना इतिहास दर्शन शिला पर उत्कीर्ण लेख के माध्यम से बतला रही है। शिलाओं पर उत्कीर्ण लेख लम्बे समय तक सुरक्षित रह पाना देवी का चमत्कार ही कहा जा सकता है।''.

माता के दर्शन करने हेतु सड़क व रेल मार्ग से परबतसर होते हुए किनसरिया पहुंचा जा सकता है।

जादौन (यदुवंश) की कुलदेवी अंजनी माता

राजस्थान की वीर प्रसूता भूमि के पूर्वी भाग जिसे वर्तमान में करौली के नाम से जाना जाता है, में भगवान कृष्ण की वंश परम्परा के यदुवंशी क्षत्रिय वीरों का शासन रहा है। करौली के यदुवंशी शासक जादौन (जाधव) राजपूत राजवंश के नाम से प्रसिद्ध है। भरतपुर के जाट शासक भी अपने को करौली के जादौन राजवंश से निकला हुआ मानते है। जब यदुवंशी महाराजा अर्जुन देव ने 1348 ई. में करौली राज्य की स्थापना की, तभी उन्होंने करौली से उत्तरी दिशा में 3 कि.मी. की दूरी पर पांचना नदी के किनारे पहाड़ी पर, अंजनी माता का मंदिर बनवा कर अपनी कुलदेवी के रूप में पूजने लगे और अंजनी माता जादौन राजवंश की कुलदेवी के रूप में पूजित हुई। हालाँकि यदुवंशी क्षत्रिय अंजनी माता के साथ कैला देवी को भी कुलदेवी के रूप में मानते है। वस्तुतः कैला देवी को राम सेवक हनुमान की माता अंजनी का ही रूप माना जाता है।

इसी क्षेत्र के तिमनगढ़ में यदुवंशी शासन का पतन होने के बाद कुंवरपाल अंधेर कोटला (रीवा के पास) चला गया था। जिसका रीवा महाराज ने अच्छा आदर सत्कार किया। कुंवरपाल के उतराधिकारी रीवा क्षेत्र से अपने पैतृक राज्य तिमनगढ़ के उद्धार की कोशिश करते रहे। इसी कड़ी में अंधेर कोटला (रीवा क्षेत्र) में इसी यदुवंश में अर्जुनदेव अपने पुरखों का राज्य वापस लेने के लिए प्रयास किये और इस क्षेत्र के मंडरायल किले पर जो कभी उसके पुरखों के अधीन था, सन 1327 में आक्रमण कर मोहम्मद तुगलक के दुर्गरक्षक को युद्ध में परास्त कर जीत लिया और वहां से 5 किलोमीटर दूर नीदर गांव में एक गढ़ी का निर्माण कराया। सुरक्षित निवास व सैनिक छावनी के साथ ही अर्जुनदेव ने अपनी आराध्य देवी अंजनी माता की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करवा कर मंदिर बनवाया। इस तरह "अर्जुनदेव जिनके अथक प्रयासों से तिमनगढ़ में डूबा यदुवंशी सूर्य 1327 में पुनः इस क्षेत्र में चमका।"[1] अनंतर अर्जुनदेव ने नीदर गांव की गढ़ी में रहते हुए पंवार राजपूत एवं मीणों के सहयोग से अपने राज्य का विस्तार किया। इसने नीदर गांव 40 किलोमीटर की दूरी पर तिमनगढ़ किले के आस–पास के क्षेत्र में नियंत्रण रखने के लिए "वीरवास" नामक सैनिक छावनी की स्थापना (1345 ई.) में की। तत्पश्चात यहाँ पर 1348 ई. में करौली की स्थापना की गई। साथ ही अंजनी माता का मंदिर पहाड़ी पर बनवाया गया।"[2]

"स्थानीय ख्यातों के अनुसार महाराजा अर्जुनदेव ने इस नगर की आधारशिला रखने से पूर्व सन 1345 में कुलदेवी के रूप में अंजनी माता के मंदिर का निर्माण कराया। जहाँ वर्तमान में भी नवम्बर के महीने में प्रतिवर्ष मेला जुड़ता है। उपरांत गोपालदासजी की प्रतिमा को कुलदेव के रूप में पूजा जाता रहा जिसे महाराजा गोपालदास अपनी दक्षिण विजय से प्राप्त कर लाये।[3]

इस तरह यदुवंशी जादौन राजवंश की कुलदेवी के रूप में करौली में अंजनी माता के

मंदिर की स्थापना हुई। देवी मंदिर स्थापना के साथ पहाड़ी के नीचे हनुमान जी की प्रतिमा स्थापित की गई, जहाँ आज भी श्रद्धालु भक्तगण अपनी मनोकामना की पूर्ति हेतु मंगलवार व शनिवार को आते है और हनुमान जी के आगे नतमस्तक होते है। देवउठनी एकादशी के दिन अंजनी माता मंदिर के पास मेला जुड़ता है और पांचना नदी में इस दिन स्नान करने पर असाध्य रोगों के दूर होने की लोकमान्यता के चलते भक्तगण नदी में स्नान कर देवी के दर्शन करते है। चैत्र व आसोज मास में नवरात्रा के दिन भी यहाँ श्रद्धालुओं द्वारा विशेष पूजा–अर्चना, उपासना की जाती है। अंजनी माता का यह मंदिर आज भी करौली क्षेत्र के लोगों का आस्था स्थल है। जहाँ आस–पास के लोग अपने परिवार के विशेष मांगलिक कार्य करने से पूर्व माता अंजनी का आशीर्वाद लेने माता की दहलीज पर शीश नवाने आते है।

---

1. करौली राज्य का इतिहासय पृ. 90, दामोदर लाल गर्ग
2. राजस्थान की कुल्देवियांय पृ. 50, डा. विक्रमसिंह भाटी
3. करौली राज्य का इतिहासय पृ. 89, दामोदर लाल गर्ग

जादौन (यदुवंश) की कुलदेवी कैला माता

सदियों से शक्ति के उपासक क्षत्रियों ने जहाँ जहाँ अपने राज्य स्थापित किये, शक्ति की प्रतीक देवी के विभिन्न नामों से मंदिर बनवाये और उसे अपनी कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठित कर उपासना की। करौली के यदुवंशी जादौन क्षत्रियों ने भी करौली राज्य की स्थापना के समय अपनी कुलदेवी अंजनी माता का मंदिर बनवाया जो आजतक विद्यमान है और जन–आस्था के इस केंद्र पर लाखों लोग शीश नवाते है।

जादौन शासक अर्जुनदेव द्वारा करौली की स्थापना के समय अंजनी माता का मंदिर बनवाकर उसे कुलदेवी के रूप में स्वीकार किया था। लेकिन यहाँ के बाद के शासकों ने अंजनी माता के साथ ही कैला देवी को भी अंजनी माता का रूप मानते हुए कुलदेवी व गोपालदास को कुलदेवता के रूप में स्वीकार किया। महाराजा गोपालदास ने श्री मदनमोहन प्रतिमा को जयपुर नरेश जगतसिंह से प्राप्त कर सन 1749 में अपनी राजधानी में प्रतिष्ठित कर उसे रियासत का सर्वेश्वर स्वीकारा। जिसे वर्तमान में श्रीजी के नाम पर सिद्धपीठ माना जताा है। महाराजा भंवरपाल ने खींची राजपूतों की कुलदेवी (कैला देवी) के प्रति अपनी अनन्य भक्ति समर्पित कर उसे स्वीकारा। इस प्रकार इष्टदेव के नाम पर यहाँ विभिन्न देवों की मान्यताएं पृथक–पृथक शासनकाल में स्वीकारी है।"[1]

करौली राज्य के दक्षिण–पश्चिम के बीच में 23 कि.मी. की दूरी पर चम्बल नदी के पास त्रिकूट पर्वत की मनोरम पहाड़ियों में सिद्दपीठ कैलादेवी जी का पावन धाम है। जिस स्थान पर माँ कैलादेवी जी का मंदिर बना है। वह स्थान खींची राजा मुकुन्ददास की रियासत के अधीन था। मुकुन्ददास ने बॉसीखेड़ा नामक स्थान पर चामुण्डा देवी की बीजक रूपी मूर्ति स्थापित करवाई थी और वो वहां अक्सर आराधना के लिये आते थे। एक बार खींची राजा मुकुन्ददास ने कैलादेवी जी की कीर्ति सुनी तो पत्नी सहित माता के दर्शनार्थ आये। माता के दर्शनार्थ पश्चात् उनके मन में माता के प्रति अगाध श्रृद्धा बढ़ी। राजा ने देवी का मंदिर बनवाने हेतु उसी दिन निर्माण शुरू करवा दिया व निर्माण पूर्ण होते ही कैलादेवी की प्रतिमा को विधि पूर्वक स्थापित करवाया।

कुछ समय बाद विक्रम संवत 1506 में यदुवंशी राजा चन्द्रसेन ने इस क्षेत्र पर अपना कब्जा कर लिया। तब उसी समय एक बार यदुवंशी महाराजा चन्द्रसेन के पुत्र गोपालदास दौलताबाद के युद्द में जाने से पूर्व कैला माता के दरबार में गये और प्रार्थना की कि अगर मेरी इस युद्ध में विजय हुई तो आपके दर्शन करने के लिये हम फिर आयेंगे। जब राजा गोपालदास दौलताबाद के युद्ध में फतह हासिल कर के लौटे तब माता जी के दरबार में सब परिवार सहित एकत्रित हुये।

तभी यदुवंशी महाराजा चन्द्रसेन ने कैला माता से प्रार्थना की कि हे कैला माँ आपकी कृपा से मेरे पुत्र गोपालदास को युद्ध में फतह हासिल हुई है। आज से सभी यदुवंशी राजपूत

माता के साथ साथ आपकी भी अपनी कुलदेवी (अधिष्ठात्री देवी के रूप में) पूजा किया करेंगे और आज से मैया का पूरा नाम श्री राजराजेश्वरी कैला महारानी जी होगा। तभी से करौली राजकुल का कोई भी राजा युद्ध में जाये या राजगद्दी पर बैठे अपनी कुलदेवी श्री कैलादेवी का आशीर्वाद लेने जरूर जाता है और तभी से राजराजेश्वरी कैलादेवी करौली राजकुल की कुलदेवी के रूप में पूजी जा रही है।

करौली के नजदीक कालीसिल नदी के किनारे निर्मित देवी के इस भव्य मंदिर के मुख्य कक्ष में कैला देवी व चामुण्डा माता की प्रतिमाएं स्थापित है जिनमें कैला देवी की प्रतिमा का मुख कुछ टेढ़ा है। जिसके बारे में जनश्रुति है कि एक बार एक भक्त को बिना दर्शन किये ही मंदिर से लौटा दिया था, तब देवी ने अपने मूल स्वरूप से हटकर उस भक्त को जिस दिशा में वह गया था, निहारने लगी। अतः उस दिन से देवी का मुख कुछ टेढ़ा है।

इस मंदिर की स्थापना व यहाँ देवी के प्रकट होने के सम्बन्ध में एक और कहानी प्रचलित है। कालीसिल नदी के त्रिकुट पर्वत पर केदार गिरी नामक एक साधू रहता था। जिसने देवी को प्रसन्न कर उनके दर्शन करने हेतु बिहार के हिंगलाज पर्वत पर 12 वर्ष तक कठोर तपस्या की थी। जब देवी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिए तो तब साधू ने त्रिकुट पर्वत पर रहने वाले एक राक्षक का वध करने का अनुरोध किया। देवी ने साधू का अनुरोध स्वीकार करते हुए त्रिकुट पर्वत पर आकर राक्षक का वध कर दिया। कैला देवी मंदिर से आधा किलोमीटर पूर्व नदी के किनारे एक चट्टान पर देवी के चरण चिन्ह आज तक बने हुए है। इस प्रकार ई. 1114 में केदार गिरी द्वारा देवी की एक मूर्ति यहाँ स्थापित की गई। बाद में खींची मुकंददास, यादव राजा गोपालसिंह, भंवरपालसिंह द्वारा इस मंदिर में अनेक भवनों का निर्माण करवाया गया।[2]

अनूठी वास्तुकला के अनुपम उदाहरण के रूप में नहीं छतरियों वाले संगमरमर से निर्मित इस मंदिर में भक्तगणों की भीड़ लगी रहती है। विशेष अवसरों पर इतनी भीड़ होती है कि यहाँ बनी धर्मशालाओं में पैर रखने की जगह तक उपलब्ध नहीं होती। आगरा संभाग में सभी जातियों के अलावा अग्रवाल वैश्य परिवार बड़ी संख्या में यहाँ नियमित दर्शनार्थ आते है। "सामान्यतया मूर्ति पूजा विरोधी होने के उपरांत भी फिरोजाबाद के मुस्लिम भक्त प्रतिवर्ष सैंकड़ों सहयोगियों को लेकर माँ के दर्शन करने आते है तथा छप्पन भोग से पूजा करते है, फूल बंगला से भवन की सजावट करते है और भंडारे का आयोजन करते है।"[3]

इस तरह कैला देवी यदुवंशी जादौन राजपूत राजवंश के साथ क्षेत्र के सभी समुदायों की आस्था का केंद्र है। बड़ी संख्या में श्रद्धालु मांगलिक कार्य से पूर्व व विवाहोपरांत वर वधु व शिशु जन्म के बाद शिशु को लेकर माता कैला देवी के आशीर्वाद हेतु माता की दहलीज पर मत्था टेकने आते है।

---

1. करौली राज्य का इतिहासय पृ. 89, दामोदर लाल गर्ग
2. राजस्थान की कुलदेवियांय पृ. 51,, लेखक, डा. विक्रमसिंह भाटी
3. राजस्थान की कुलदेवियांय पृ. 52, लेखक, डा. विक्रमसिंह भाटी

सैंगर वंश की कुलदेवी विन्ध्यवासिनी माता

चन्द्रवंशीय क्षत्रियों की एक प्राचीन शाखा है सैंगर, जिसे सैंगर राजवंश कहा जाता है। सैंगर वंश के क्षत्रिय शासकों ने समय समय पर भारत भूमि के कई प्रदेशों यथा चेदी प्रदेश (डाहल), राढ़ (कर्ण–सुवर्ण), दक्षिण प्रदेश (आन्ध्र आदि), सौराष्ट्र अथवा गुजरात, मालवा, डाहर आदि स्थानों पर शासन किया है। भारत भूमि पर शासन करने वाले इस राजवंश के वीर वंशजों ने हमेशा माता विंध्यवासिनी के रूप में शक्ति की उपासना की और माता विंध्यवासिनी को अपनी कुलदेवी के रूप में स्वीकार करते हुए प्रतिस्थापित की।

ऐसा माना जाता है कि मां विंध्यवासिनी एक ऐसी जागृत शक्तिपीठ है जिसका अस्तित्व सृष्टि आरंभ होने से पूर्व और प्रलय के बाद भी रहेगा। इस देवी के 3 रूपों का सौभाग्य भक्तों को प्राप्त होता है।

पुराणों में विंध्य क्षेत्र का महत्व तपोभूमि के रूप में वर्णित है। विंध्याचल की देवी मां विंध्यवासिनी देश के 51 शक्तिपीठों में से एक है। विंध्याचल की पहाड़ियों में गंगा की पवित्र धाराओं की कल–कल करती ध्वनि, प्रकृति की अनुपम छटा बिखेरती है।

त्रिकोण यंत्र पर स्थित विंध्याचल निवासिनी देवी लोकहिताय, महालक्ष्मी, महाकाली तथा महासरस्वती का रूप धारण करती हैं। विंध्यवासिनी देवी विंध्य पर्वत पर स्थित मधु तथा कैटभ नामक असुरों का नाश करने वाली भगवती यंत्र की अधिष्ठात्री देवी हैं। कहा जाता है कि जो मनुष्य इस स्थान पर तप करता है, उसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। विविध संप्रदाय के उपासकों को मनवांछित फल देने वाली मां विंध्यवासिनी देवी अपने अलौकिक प्रकाश के साथ यहां नित्य विराजमान रहती हैं।

ऐसी मान्यता है कि सृष्टि आरंभ होने से पूर्व और प्रलय के बाद भी इस क्षेत्र का अस्तित्व कभी समाप्त नहीं हो सकता। यहां पर संकल्प मात्र से उपासकों को सिद्धि प्राप्त होती है। इस कारण यह क्षेत्र सिद्ध पीठ के रूप में विख्यात है। चैत्र व शारदीय नवरात्र के अवसर पर यहां देश के कोने–कोने से भक्तों का का समूह जुटता है। विध्य पर्वत श्रृंखला (मिर्जापुर, यूपी) के मध्य पतित पावनी गंगा के कंठ पर विराजमान मां विंध्यवासिनी देवी मंदिर श्रद्धालुओं की आस्था का प्रमुख केन्द्र है।

सबसे खास बात यह है कि यहां तीन किलोमीटर के दायरे में तीन प्रमुख देवियां विराजमान हैं। ऐसा माना जाता है कि तीनों देवियों के दर्शन किए बिना विंध्याचल की यात्रा अधूरी मानी जाती है। मां विंध्यवासिनी तीनों के केन्द्र में हैं। यहां निकट ही कालीखोह पहाड़ी पर महाकाली तथा अष्टभुजा पहाड़ी पर अष्टभुजी देवी विराजमान हैं।

शास्त्रों में मां विंध्यवासिनी के ऐतिहासिक महात्म्य का अलग–अलग वर्णन मिलता है। शिव पुराण में मां विंध्यवासिनी को सती माना गया है तो श्रीमद्भागवत में नंदजा देवी कहा

गया है। मां के अन्य नाम कृष्णानुजा, वनदुर्गा भी शास्त्रों में वर्णित हैं। शास्त्रों में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि आदिशक्ति देवी कहीं भी पूर्णरूप में विराजमान नहीं हैं। विंध्याचल ही ऐसा स्थान है जहां देवी के पूरे विग्रह के दर्शन होते हैं। मां के इस धाम में त्रिकोण यात्रा का विशेष महत्व होता है। जिसमें लघु और बृहद त्रिकोण यात्रा की जाती है। लघु त्रिकोण यात्रा में एक मंदिर परिसर में मां के 3 रूपों के दर्शन होते हैं। वहीं दूसरी ओर बृहद त्रिकोण यात्रा में तीन अलग–अलग रूपों में मां विंध्यवासिनी, मां महाकाली व मां अष्टभुजी के दर्शनों का भक्तों को सौभाग्य मिलता है।

सेंगर वंशीय क्षत्रियों का सबसे बड़ा तथा चिरस्थायी राज्य चेदि प्रदेश था। यहाँ सेंगर राजा डाहर देव जिसे डाहल देव व डाभाल देव के नाम से भी जाना जाता है प्रसिद्ध राजा हुआ है। "इसी वंश के राजा कर्णदेव ने अपना राज्य पुत्र को देकर यमुना व चर्मण्वती के संगम पर अपना नया राज्य स्थापित किया तथा वहां कर्णगढ़ नाम से दुर्ग बनवाकर कर्णवती नाम से राजधानी बनायीं।"[1] सैंगरों का राज्य करनार (जिला जालौन) में भी था। यहाँ के विशांकदेव ने अपनी रानी के नाम से देवकली नगर बसाया व अपने राज्य में बहने वाली बसीद नदी का नाम बदल कर सैंगर नदी रखा। इसके वंशज जगमन्न शाह ने बाबर का सामना किया था। इनके राज्य के सिरोज नामक जगह पर कुलदेवी विंध्यवासिनी का मंदिर था जिसे औरंगजेब ने तुड़वा दिया था। [2] बांसवाड़ा राज्य के इतिहास में वैजवा माता (विंध्यवासिनी) के लेख का उल्लेख हुआ है। जिससे ज्ञात होता है कि विंध्यवासिनी (सैंगरों की कुलदेवी) का मंदिर भैंकरोड़ गांव के पास स्थित है मंदिर से प्राप्त लेख (1234 ई.) के अनुसार वागड़ के वट प्रदक (बड़ोदे) के महाराजाधिराज श्री सीहड़देव के राज्य समय उनका महाप्रधान वीहड़ था। उस वक्त देवी के भोपा मेल्हण के पुत्र वैजाक ने उस मंदिर का पुनरुद्धार कराया था।[3]

चन्द्रवंशी यदु के वंशज हैयय के वंशधर कलचूरी वंश भी माता विंध्यवासिनी की कुलदेवी के रूप में पूजा, अर्जना, उपासना करते है।

---

1. राजपूत वंशावलीय पृ. 325, ईश्वर सिंह मड़ाढ।
2. राजस्थान की कुलदेवियाँ पृ 119, डा. विक्रमसिंह भाटी।
3. राजस्थान की कुलदेवियाँ पृ 119, डा. विक्रमसिंह भाटी।

भाटी वंश की कुलदेवी स्वांगियां माता

राजस्थान के जनमानस में आस्था की प्रतीक लोकदेवियों, कुलदेवियों के उद्भवसूत्र पर यदि दृष्टि डाली जाये तो हम पायेंगे कि शक्ति की प्रतीक बहुत सी प्रसिद्ध देवियों का जन्म चारणकुल में हुआ है। चारणकुल में जन्मी प्रसिद्ध देवियों में आवड़, स्वांगियां, करणी माता आदि प्रमुख है। विभिन्न राजवंशों की गौरवगाथाओं के साथ इन देवियों की अनेक चमत्कारिक घटनाएँ इतिहास के पन्नों पर दर्ज है। वीर विनोद के लेखक श्यामलाल ने चारणों की उत्पत्ति देव सर्ग में बतलाते हुये उनकी गणना देवताओं में की है। इसके लिए उन्होंने श्रीमद्भागवत का संदर्भ दिया है।

चारणकुल में जन्मी इन देवियों ने अपने जीवनकाल में ही प्रत्यक्ष चमत्कारों के बलबूते राजस्थान के आम जन मानस को नहीं, तत्कालीन शासकों को भी प्रभावित किया है। यही कारण है कि इन देवियाँ को इनके जीवनकाल में ही जहाँ आम जनता ने ईष्टदेवी के रूप में मान्यता दी, वहीं शासकों ने इन्हें अपने कुल की देवी के रूप में स्वीकार किया। राजस्थान के प्रत्येक राजवंश ने देवीशक्ति के महत्त्व को मानते हुए अपने राज्य की स्थापना को कुलदेवी का आशीर्वाद माना तथा विभिन्न युद्धों में विजयी होने और राज्य के चहुँमुखी विकास में सफल होने पर अपनी कुलदेवी में पूर्ण आस्था रखते हुए अनेकानेक भव्य मंदिरों का निर्माण कराया व उनकी पूजा अर्चना का पुख्ता प्रबंध करवाते हुए जन जन में देवी के प्रति आस्था की अलख जगाई।

उतर भड़ किंवाड़ के विरुद से विभूषित, शक्ति के उपासक राजस्थान में जैसलमेर के भाटी राजवंश ने चारणकुल में जन्मी देवी स्वांगियां को शक्ति का प्रतीक मानते हुए कुलदेवी के रूप में स्वीकार किया। स्वांगियां जिसे आवड़ माता के नाम से भी जाना जाता है, की भाटी राजवंश की गौरवगाथाओं के साथ अनेक चमत्कारी घटनाएँ जुड़ी है।

ऐसी मान्यता है कि देवी आवड़ के पूर्वज जो सउवा शाखा के चारण थे, सिंध के निवासी थे। उनका गौपालन के साथ घोड़ों व घी का व्यवसाय था। उसी परिवार का एक चेला नामक चारण मांड प्रदेश (वर्तमान जैसलमेर) के चेलक गांव में आकर बस गया। उसके वंश में मामड़िया नाम का एक चारण हुआ, जिसके जिसके घर सात कन्याओं ने जन्म लिया। लोकमान्यता के अनुसार मामड़िया चारण के संतान नहीं थी, सो संतान की चाहत में उसने संवत 808 में हिंगलाज की यात्रा की। तब हिंगलाज ने ही सात कन्याओं के रूप में उसके घर जन्म लिया। इन सातों कन्याओं में सबसे बड़ी कन्या का नाम आवड़ रखा गया। मांड प्रदेश में अकाल के वक्त ये परिवार सिंध में जाकर हाकड़ा नदी के किनारे कुछ समय रहा। जहाँ इन बहनों ने सूत कातने का कार्य भी किया। इसलिए ये कल्याणी देवी कहलाई। फिर आवड़ देवी की पावन यात्रा और जनकल्याण की अद्भुत घटनाओं के साथ ही क्रमशः सात

मंदिरों यथा काला डूंगरराय का मंदिर, भादरियाराय का मंदिर, तन्नोटराय का मंदिर, तेमड़ेराय का मंदिर, घंटीयाली राय का मंदिर, देगराय का मंदिर, गजरूप सागर देवालय का निर्माण हुआ और समग्र मांड प्रदेश में लोगों की आस्था उस देवी के प्रति बढती गई।[1]

सिंध से लौटने पर क्षेत्र के लोगों ने जिस गांव में देवी का अभिनन्दन किया उस गांव का नाम आइता रखा गया और देवी ने गांव के पास स्थित काले रंग की पहाड़ी जिसे स्थानीय भाषा में डूंगर कहा जाता है, पर आवास किया। जहाँ चमत्कारों की चर्चा सुनने के बाद लोद्रवा के परमार राजा जसभाण ने उपस्थित होकर देवी के दर्शन किये। बाद में ''यहाँ संवत 1998 में महारावल जवाहरसिंह ने मंदिर का निर्माण कराया।[2] जैसलमेर से 25 किलोमीटर दूर काले रंग की पहाड़ी पर बने मंदिर को काला डूंगरराय मंदिर के नाम से जाना जाता है तथा डूंगर पर मंदिर होने के कारण स्थानीय लोगों में माता का नाम डूंगरेचियां भी प्रचलन में है।

डा.हुकम सिंह भाटी के अनुसार बहादरिया भाटी के अनुरोध पर देवी आवड़ अपनी बहनों के साथ आकर एक टीले पर रुकी। जहाँ राव तणु भाटी ने पहुँच कर दर्शन किये और लकड़ी के बने हुए आसन (सहंगे) पर देवी को विराजमान किया गया। तीन बहनों को दाई ओर तथा तीन को बाईं तरफ खड़ा किया और अपने हाथ से चंवर ढुलाए। तब आवड़ जी ने आशीर्वाद देते हुए कहा–''मांड प्रदेश में तुम्हारे वंशजों की स्थायी राजधानी स्थापित होगी और वहां पर तुम्हारा राज्य अचल होगा।'' सहंगे पर बैठने के कारण आवड़ जी स्वांगियां कहलाई।

इस प्रकार राव तणु भाटी के बाद भाटी राजवंश ने देवी आवड़ जी को स्वांगियां माता के नाम से कुलदेवी के रूप में स्वीकार किया। बहादरिया भाटी के अनुरोध पर देवी जिस टीले पर आई बाद में उस जगह का नाम भादरिया पड़ा। जो जैसलमेर के शासकों के साथ ही स्थानीय जनता की श्रद्धा का केंद्र बना हुआ है। कहा जाता है कि संवत 1885 में बीकानेर और जैसलमेर की सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ, जिसमें स्वांगियांजी के अदृश्य चक्रों से बीकानेर सेना के अनेक सैनिक मारे गये और बाकी भाग खड़े हुए। तब तत्कालीन महारावल ने भादरिया में भव्य मंदिर का निर्माण कराया। आज भी भाटी वंश के लोग अपनी इस कुलदेवी के प्रति पूर्ण आस्था रखते है तथा देवी के प्रतीक के रूप में त्रिशूल का अंकन कर धूप दीप, पूजा–अर्चना आदि के रूप में उपासना करते है।

माता स्वांगियां का एक मंदिर भारत–पाक सीमा पर तन्नोट गांव में भी है। जैसलमेर से लगभग एक सौ तीस कि०मी० की दूरी पर तनोट राय को हिंगलाज माँ का ही एक रूप माना जाता है। हिंगलाज माता जो वर्तमान में बलूचिस्तान जो पाकिस्तान में है, स्थापित है। भाटी राजपूत नरेश तणुराव ने वि.सं. 828 में तनोट का मंदिर बनवाकर मूर्ति को स्थापित कि थी। भाटी तणुराव द्वारा निर्मित इस मंदिर में सैकड़ों वर्षों से अखण्ड ज्योति आज तक प्रज्वलित है। तणुराव भाटी द्वारा निर्मित होने के कारण इस मंदिर को तनुटिया तन्नोट मंदिर के नाम से जाना जाता है। 1965 ई. में हुए भारत–पाक युद्ध में भारतीय सेना के पक्ष में देवी द्वारा दिखाये चमत्कार के बाद मंदिर की देखरेख, पूजा अर्चना का कार्य सीमा सुरक्षा बल के जवानों द्वारा सम्पादित किया जाता है। 1965 ई. में हुए भारत–पाक युद्ध में पाक सेना ने भारतीय क्षेत्र में शाहगढ़ तक आगे बढ़कर लगभग 150 किलोमीटर कब्जा कर तन्नोट को घेर बम वर्षा

की। पर देवी की कृपा से 3000 पाकिस्तानी बमों में से एक भी नहीं फटा। जिससे क्षेत्र में कोई नुकसान नहीं नहीं हुआ। अकेले मंदिर को निशाना बनाकर करीब 450 गोले दागे गए। परंतु चमत्कारी रूप से एक भी गोला अपने निशाने पर नहीं लगा और मंदिर परिसर में गिरे गोलों में से एक भी नहीं फटा और मंदिर को खरोंच तक नहीं आई।

सैनिकों ने यह मानकर कि माता अपने साथ है, कम संख्या में होने के बावजूद पूरे आत्मविश्वास के साथ दुश्मन के हमलों का करारा जवाब दिया और उसके सैकड़ों सैनिकों को मार गिराया। दुश्मन सेना भागने को मजबूर हो गई। कहते हैं सैनिकों को माता ने स्वप्न में आकर कहा था कि जब तक तुम मेरे मंदिर के परिसर में हो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी।

इसी तरह माता के घंटियालीराय मंदिर में इसी युद्ध में पाक सैनिकों ने मूर्तियों को खंडित कर माता के कोपभाजन का शिकार बने। प्रतिमाओं को खंडित करने वाले पाक सैनिकों के मुंह से खून निकलने लगा और वे अपने शिविर में पहुँचने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हुए। इस तरह की घटना के बाद भारतीय सेना के जवानों के साथ स्थानीय जनता में माता के प्रति श्रद्धा और अधिक बढ़ गई।

1– हुकुम सिंह भाटी, राजस्थान की कुलदेवियां, पृष्ठ–44

करणी माता

राजस्थान के बीकानेर शहर से 32 किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा में बीकानेर नागौर सड़क मार्ग पर देशनोक बसा हुआ है। इसी देशनोक में विश्व में चूहों वाले मंदिर के नाम विख्यात, शक्ति के उपासकों का श्रद्धास्थल, गौसेवा व शक्ति की प्रतीक श्री करणी माता का मंदिर है। श्री करणी मढ देशनोक के नाम प्रसिद्ध इस मंदिर में राजस्थान, गुजरात, हरियाणा सहित देश के विभिन्न भागों से देवी के भक्तगण माता करणी के दर्शनार्थ आते है। आश्विन नवरात्री के अवसर पर आस–पास के जिलों सहित दूर–दराज के हजारों श्रद्धालु पदयात्रा करते हुए करणी माता की पूजा अर्चना, उपासना करने हेतु पहुँचते है। विशाल भव्य मंदिर के उन्नत सिंहद्वार के भीतर प्रशस्त प्रांगण है। आगे मध्य द्वार है। अन्दर संगमरमर का चौक बना है। तीसरा अन्तराल द्वार है और सामने निजमढ़ जिसके द्वार पर स्वर्णजटित कपाट है। निजमढ़ अखण्ड दीपशिखा से आलौकित है। निजमंदिर के ठीक मध्य में माता श्री करणी जी की प्रतिमा स्थापित है। मंदिर में जिधर नजर दौड़ाई जाय उधर चूहे ही चूहे नजर आते है। इन्हीं चूहों में एक सफेद चूहिया भी किसी को कभी कभार दिखाई दे जाती है। ऐसी मान्यता है कि जिस पर माता की खास कृपा हो, सफेद चूहिया उसे ही नजर आती है।

करणी माता के वंशज ही माता के पुजारी है, जो बारी बारी से एक एक मास पूजा करने का दायित्व संभालते है। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को बारी बदलती है। जिस पुजारी की बारी रहती है उसका मंदिर छोड़कर जाना निषेध है। अतः बारीदार पुजारी अपनी बारी के एक मास तक मंदिर में रहता है, परिवार की महिला उसे भोजन कराकर संध्या समय अपने घर चली जाती है और पुजारी परम्परा का पालन करते हुए मंदिर में ही सोता है।

राजस्थान के पांच पीरों में से एक मेहाजी मांगलिया द्वारा मेहाजी चारण को प्रदत सुवाप गांव में मेहाजी चारण की धर्म पत्नी देवल देवी के गर्भ से आश्विन शुक्ल सप्तमी, शुक्रवार, वि.सं. 1444 (28 सितम्बर 1387) को श्री करणी माता का जन्म हुआ। करणी माता के पिता मेहाजी किनिया शाखा के चारण थे। जिन्हें जोधपुर जिले की फलौदी तहसील में स्थित सुवाप गांव मेहाजी मांगलिया से उदक में मिला था। माता करणी अपनी पांच बहनों से छोटी थी। वे अपनी माता के गर्भ में 21 माह रही यानी प्रसूति में 21 माह का समय लगा। ऐसा प्रचलित है कि करणी जी के जन्म के समय उनकी माता कुछ समय के लिए मूर्छित हो गई थी और उसी अवस्था में उन्हें साक्षात् दुर्गा के दर्शन हुए। होश आने पर देवल देवी ने अपनी कन्या को देखा तो अपने पास में काली–कलूटी चौड़े मुंह की स्थूल देह वाली कन्या को पाया।

करणी माता ने अपने जन्म के समय से चमत्कार दिखाने शुरू कर दिये। उस युग में कन्या के जन्म को अशुभ माना जाता था, फिर मेहाजी के घर पहले से पांच कन्याएं थी। ऐसे में उनकी बुआ ने मेहाजी को प्रसव की जानकारी देते हुए हाथ का डूचका देते हुए कहा कि फिर पत्थर आ गया है। अर्थात् लड़की हुई है। उनके इतना कहते ही उनके उस हाथ की

सभी अंगुलियाँ ज्यों की त्यों जुड़ी रह गई और खुली नहीं। यह एक तरह से करणी जी के जन्म पर उनका उपहास उड़ाने की सजा थी।

करणी माता का नामकरण संस्कार में रिधूबाई नाम रखा गया। उनके नाम के अनुरूप ही उनके पिता की समृधि प्रतिदिन बढ़ने लगी। कुछ समय बाद करणी माता की बुआ अपने पीहर में आई हुई थी। बुआ अन्य बहनों की अपेक्षा रिधूबाई से ज्यादा प्रेम करने लगी। एक दिन वह रिधूबाई को नहला रही थी, तभी रिधूबाई ने उनके हाथ के बारे में पूछा। बुआ ने उनके जन्म के समय की पूरी कहानी बता डाली। तभी रिधूबाई ने बुआ का हाथ अपने हाथ में लिया और कहा यह तो एकदम ठीक है और ऐसा ही हुआ। बुआ का हाथ ठीक हो गया। उसी दिन बुआ ने रिधूबाई का नाम यह कहते हुए कि यह साधारण कन्या नहीं है यह संसार ने अपनी करनी दिखलायेगी। अतः इसका नाम करणी होना चाहिये। तभी से रिधूबाई का नाम करणी पड़ा और करणी अपनी करनी से श्री करणी माता के नाम से विश्व विख्यात हुई।

बुआ का हाथ ठीक करने के बाद छः वर्षीय करणी ने विषैले सर्प द्वारा डसने से अपने मृत पिता को जीवनदान देकर, सुवा ब्राह्मण व अपने पिता को पुत्र प्राप्ति का वरदान देकर, अपने बचपन में ही अपने चमत्कारों से लोगों को प्रभावित कर अपने दैवीय गुण प्रदर्शित कर दिए थे। 27 वर्ष की आयु में करणी जी का साठिका गांव के केलूजी बिठू के पुत्र देपाजी के साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ। चूँकि करणी जी को गायें बहुत प्रिय थी और वो गौसेवा में वह तल्लीन रहती थी, सो विवाह के समय उनके पिता द्वारा भेंट की गई 400 गायों में से 200 गायें वे अपने ससुराल साथ ले गई। चूँकि करणी जी गौसेवा के रत रहती थी, साथ ही देवी का अवतार थी। अतः उन्होंने गृहस्थी चलाने के लिए देपाजी के साथ अपनी छोटी बहिन गुलाब बाई का विवाह करा दिया। इस सम्बन्ध में डा. नरेन्द्रसिंह चारण अपने शोध ग्रन्थ ''श्री करणी माता का इतिहास'' के पृष्ठ संख्या 55 पर लिखते है– ''देपाजी ने श्रीकरणीजी को पानी का पूछने के लिए जैसे ही रथ का पर्दा उठाया तो देखा कि वहां पर एक सिंह सवार, सूर्य का लावण्य धारण करने वाली रूप और सौन्दर्य की पूंजरूप श्री महाशक्ति स्वयं हाथ में त्रिशूल लिए खड़ी है। यह देखते ही देपाजी दूर जा खड़े हुये तब देवी ने कहा कि आपको मैंने अपना लौकिक और वास्तविक दोनों रूप बता दिए है, आप जिस रूप में चाहें मुझे देख सकते है क्योंकि मेरा भौतिक रूप विरूप, काला रंग, मोटा और चौड़ा चेहरा है। मैं आपकी सहधर्मिणी अवश्य हूँ, परन्तु मेरा यह भौतिक शरीर आपके उपभोग का साधन नहीं है। आप मुझसे गृहस्थ सम्बन्ध नहीं रख सकते। अपनी गृहस्थी के लिए आप मेरी छोटी बहिन गुलाब बाई से विवाह कर लेना और वह आपकी गृहस्थी संभालेगी। मुझे तो इस लोक में दीन–दुखियों पर अत्याचार करने वाले, संपत्तियों को लूटने वाले वे लोग, जो अपना कर्तव्य भूल गये है, उनको कर्तव्य का बोध कराने के लिए इस लोक में आना पड़ा है।''

करणीजी की ससुराल में पानी की कमी थी। गांव में एक ही कुआ होने के चलते उनकी गायों को पीने के पानी की किल्लत होती थी। गांव के लोग भी उनके ज्यादा पशुधन को पानी की कमी मानते थे। अतः करणीजी ने निर्णय किया कि वे अपना ससुराल छोड़कर अपनी गायों के साथ ऐसे स्थान पर जायेगी जहाँ उनकी गायों को भरपूर चारा और पानी मिल सके। इस निर्णय के बाद करणी जी अपने परिजनों व पशुधन के साथ साठिका गांव का परित्याग कर जांगलू देश के जाल वृक्षों से आच्छादित जोहड़ पहुंची और वहीं अपना

स्थाई निवास बनाया। उनका यही स्थान आगे चलकर देशनोक कहलाया। चूँकि करणीजी के चमत्कारों से प्रभावित बहुत से लोग अपने दुखों से छुटकारा पाने व उनसे आशीर्वाद लेने इस स्थान पर आते थे, इस तरह से यह स्थान उस काल उस क्षेत्र का प्रतिष्ठित स्थान मतलब देश की नाक समझा गया और देशनाक से जाना जाने लगा, जो आगे चलकर भाषा के अपभ्रंश के चलते देशनोक हो गया।

उस काल जांगलू देश की स्थिति बहुत खराब थी। उदावत राठौड़, सांखला व भाटी राजपूत, जाट व मुसलमानों के कई छोटे छोटे राज्य थे। जो आपस में एक दूसरे के राज्य में लूटपाट किया करते थे। जिससे स्थानीय प्रजा बहुत दुखी थी, जो करणीजी के दैवीय चमत्कारों के बारे सुनकर अपनी समस्या के निदान हेतु उनके पास आती थी। उस काल के कई शासक भी करणीजी के अनन्य भक्त थे। मण्डोर के शासक रणमल व उनके पुत्रों पर भी करणीजी का बहुत प्रभाव था। यही कारण था कि बीकानेर के संस्थापक राव बीका जांगलू क्षेत्र की अराजक स्थिति का लाभ उठाकर वहां अपना राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से आये तो वे सबसे पहले करणीजी के पास आशीर्वाद लेने पहुंचे व अपना मंतव्य बताया। तब करणीजी ने वहां की अराजकता से प्रजा को निजात दिलाने हेतु बीका को योग्य पुरुष समझ आशीर्वाद दिया कि ''तेरा प्रताप जोधा से सवाया बढेगा और बहुत से भूपति तेरे चाकर होंगे।'' यह आशीर्वाद लेकर बीका ने चूंडासर में रहते हुए आप–पास के छोटे छोटे राज्यों को जीतकर जांगलू प्रदेश पर अपना अधिकार कायम किया और करणीजी की सलाह व आशीर्वाद से उस क्षेत्र में गढ़ बनवाकर बीकानेर नगर की स्थापना कर उसे अपनी राजधानी बनाया।

करणीजी ने अपने जीवनकाल में सामाजिक सरोकारों से जुड़े कई कार्य किये, जांगलू प्रदेश में राव बीका जैसे योग्य व्यक्ति की सत्ता स्थापित करवाना, लोगों के आपसी झगड़े निपटाना, स्त्री सशक्तिकरण, गौ सेवा आदि के साथ पर्यावरण के लिए माता ने भरपूर कार्य किया। देशनोक में उन्होंने दस हजार बीघा भूमि पर ओरण बनवाया जो पर्यावरण व पशुधन के लिए वरदान साबित हुआ। यही नहीं करणीजी की प्रेरणा से प्रेरित होकर भविष्य में भी राजपूत राजाओं द्वारा अपने राज्यों में इस तरह के ओरण हेतु भूमि छोड़ने की परम्परा बन गई जो पर्यावरण के लिए वरदान साबित हुई।

150 वर्ष की आयु होने व अपने दैवीय अवतारों के कार्य पूर्ण होने पर करणीजी ने अपनी भौतिक देह त्याग करने का मानस बनाया और अपनी इच्छा परिजनों को बताई कि मैं जैसलमेर होती हुई तेमड़ाराय के दर्शन करके बहिन बूट और बहुचरा से मिलने खारोड़ा (सिंध, पाकिस्थान) जाऊँगी और वापसी के समय रास्ते में अपनी भौतिक देह का त्याग करूँगी। वि.सं. 1594 (1537 ई.) के माघ मास में अपने ज्येष्ठ पुत्र पूण्यराज, सारंगिया विश्नोई (रथवान) और एक सेवक के साथ करणीजी अपनी इस यात्रा के लिए रवाना हुई। वापसी यात्रा के समय वि.सं. 1595 (1538 ई.) चैत्र शुक्ला नवमी गुरुवार को गड़ियाला और गिराछर के बीच धीनेरू गांव की तलाई के पास पहुँचने पर करणीजी ने रथ को रुकवाया और वहीं अपनी देह त्याग हेतु मिट्टी की एक चौकी बनवाकर उस बैठे। रथवान सारंगिया विश्नोई को आदेश दिया कि उनके शरीर पर पानी उढेल दे। डा. नरेंद्रसिंह चारण के अनुसार ''रथवान सारंगिया विश्नोई ने झारी लेकर उसका पानी उन पर उढेल दिया। ज्योंही झारी का पानी उनके भौतिक शरीर पर गिरा त्योंही उनके शरीर से एक ज्वाला निकली और उस ज्वाला में उसी क्षण

उनका वह भौतिक शरीर अदृश्य हो गया। वहां कुछ भी नहीं था। ज्योति में ज्योतिर्लीन हो गये। इस प्रकार वि.सं. 1595 (1538 ई.) चैत्र शुक्ला नवमी गुरुवार को श्रीकरणीजी ज्योतिर्लीन हुए।''

श्री करणी माता के मंदिर में आज भी दूर–दराज से भक्तगण उनके दर्शनार्थ आते है। राव बीका के वंशज बीका राठौड़ श्री करणी माता को अपनी ईष्ट देवी मानते हुए उनकी आराधना, उपासना करते है।

जीण माता

जीण माता मंदिर जो राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र का प्रमुख शक्तिपीठ है। सदियों से जन–आस्था की केंद्र रही यह पीठ कैर, जाल, झाड़ियों व अन्यान्य वृक्षों से घिरी सुरम्य व रमणीक अरावली पर्वतमाला की तलहटी में सीकर से लगभग 30 कि.मी. दूर दक्षिण में सीकर जयपुर राजमार्ग पर गोरियां रेलवे स्टेशन से 15 कि.मी. पश्चिम व दक्षिण के मध्य स्थित है। मंदिर के निकटवर्ती वन भूमि जिसे बनी या ओरण (अरण्य) कहा जाता है, में वृक्षों की कटाई पर पाबंदी है। यह मंदिर तीन पहाडों के संगम में 20–25 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। माता का निज मंदिर दक्षिण मुखी है, परन्तु मंदिर का प्रवेश द्वार पूर्व में है। मंदिर से एक फर्लांग दूर ही सड़क के एक छोर पर जीणमाता बस स्टैंड है। सड़क के दोनों और मंदिर से लेकर बस स्टैंड तक श्रद्धालुओं के रुकने व आराम करने के लिए भारी तादात में तिबारे (बरामदे) व धर्मशालाएं बनी हुई है। जिनमें ठहरने का कोई शुल्क नहीं लिया जाता। कुछ और भी पूर्ण सुविधाओं युक्त धर्मशालाएं है, जिनमें उचित शुल्क देकर ठहरा जा सकता है। बस स्टैंड के आगे ओरण (अरण्य) शुरू हो जाता है, इसी अरण्य के मध्य से ही आवागमन होता है।

जीण माँ भगवती की यह बहुत प्राचीन शक्ति पीठ है, जिसका निर्माणकार्य बड़ा सुंदर और सुद्रढ़ है। मंदिर के देवायतन का द्वार सभा मंडप में पश्चिम की और है और यहाँ जीण माँ भगवती की अष्ट भुजा आदमकद मूर्ति प्रतिष्ठापित है। सभा मंडप पहाड़ के नीचे मंदिर में ही एक और मंदिर है जिसे गुफा कहा जाता है, जहाँ जगदेव पंवार का पीतल का सिर और कंकाली माता की मूर्ति है। मंदिर के पश्चिम में महात्मा का तप स्थान है जो धुणा के नाम से प्रसिद्ध है। जीण माता मंदिर के पहाड़ की श्रंखला में ही रेवासा व प्रसिद्ध हर्षनाथ पर्वत है। हर्षनाथ पर्वत पर आजकल हवा से बिजली उत्पन्न करने वाले बड़े–बड़े पंखे लगे है। जीण माता मंदिर से कुछ ही दूर रलावता ग्राम के नजदीक ठिकाना खूड़ के गांव मोहनपुरा की सीमा में शेखावत वंश और शेखावाटी के प्रवर्तक महाराव शेखाजी का स्मारक स्वरुप छतरी बनी हुई है। महाराव शेखाजी ने गौड़ क्षत्रियों के साथ युद्ध करते हुए यहीं शरीर त्याग कर वीरगति प्राप्त की थी। मंदिर के पश्चिम में जीणवास नामक गांव है, जहाँ इस मंदिर के पुजारी व बुनकर रहते है।

जीण माता मंदिर में चैत्र सुदी एकम से नवमी (नवरात्रा में) व आसोज सुदी एकम से नवमी में दो विशाल मेले लगते है। जिनमें देश भर से लाखों की संख्या में श्रद्धालु आते है। मंदिर में शराब चढाई जा सकती है लेकिन पशु बलि वर्जित है।

मंदिर की प्राचीनता

मंदिर का निर्माण काल कई इतिहासकार आठवीं सदी में मानते है। मंदिर में अलग–अलग आठ शिलालेख लगे है जो मंदिर की प्राचीनता के सबल प्रमाण है।

1– संवत 1029 यह महाराजा खेमराज की मृत्यु का सूचक है।

2– संवत 1132 जिसमे मोहिल के पुत्र हन्ड द्वारा मंदिर निर्माण का उल्लेख है।

3–4– संवत 1196 महाराजा आर्णोराज के समय के दो शिलालेख।
5– संवत 1230 इसमें उदयराज के पुत्र अल्हण द्वारा सभा मंडप बनाने का उल्लेख है।
6– संवत 1382 जिसमे ठाकुर देयती के पुत्र श्री विच्छा द्वारा मंदिर के जीर्णोद्वार का उल्लेख है।
7– संवत 1520 में ठाकुर ईसर दास का उल्लेख है।
8– संवत 1535 को मंदिर के जीर्णोद्वार का उल्लेख है।

उपरोक्त शिलालेखों में सबसे पुराना शिलालेख 1029 का है पर उसमे मंदिर के निर्माण का समय नहीं लिखा गया। अतः यह मंदिर उससे भी अधिक प्राचीन है। चौहान चन्द्रिका नामक पुस्तक में इस मंदिर का 9 वीं शताब्दी से पूर्व के आधार मिलते है।

जीण का परिचय

लोक काव्यों व गीतों व कथाओं में जीण का परिचय मिलता है जो इस प्रकार है– राजस्थान के चुरू जिले के घांघू गांव में एक चौहान वंश के राजपूत के घर जीण का जन्म हुआ। उसके एक बड़े भाई का नाम हर्ष था। दोनों भाई–बहिन के बीच बहुत अधिक स्नेह था। एक दिन जीण और उसकी भाभी सरोवर पर पानी लेने गई, जहाँ दोनों के मध्य किसी बात को लेकर तकरार हो गई। उनके साथ गांव की अन्य सखी सहेलियां भी थी। अन्ततः दोनों के मध्य यह शर्त रही कि दोनों पानी के मटके घर ले चलते है जिसका मटका हर्ष पहले उतरेगा उसके प्रति ही हर्ष का अधिक स्नेह समझा जायेगा। हर्ष इस विवाद से अनभिज्ञ था। पानी लेकर जब घर आई तो हर्ष ने पहले मटका अपनी पत्नी का उतार दिया। इससे जीण को आत्मग्लानि व हार्दिक ठेस लगी। भाई के प्रेम में अभाव जान कर जीण के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह घर से निकल पड़ी। जब भाई हर्ष को कर्तव्य बोध हुआ तो वो जीण को मनाकर वापस लाने उसके पीछे निकल पड़ा। जीण ने घर से निकलने के बाद पीछे मुड़कर ही नहीं देखा और अरावली पर्वतमाला के इस पहाड़ के एक शिखर जिसे 'काजल शिखर' के नाम से जाना जाता है पहुँच गई। हर्ष भी जीण के पास पहुँच अपनी भूल स्वीकार कर क्षमा चाही और वापस साथ चलने का आग्रह किया, जिसे जीण ने स्वीकार नहीं किया। जीण के दृढ निश्चय से प्रेरित हो हर्ष भी घर नहीं लौटा और दूसरे पहाड़ की चोटी पर भैरव की साधना में तल्लीन हो गया। पहाड़ की यह चोटी बाद में हर्षनाथ पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध हुई। वहीं जीण नव–दुर्गाओं की कठोर तपस्या करके सिद्धि के बल पर दुर्गा बन गई। हर्ष भी भैरव की साधना कर हर्षनाथ भैरव बन गया। इस प्रकार जीण और हर्ष अपनी कठोर साधना व तप के बल पर देवत्व प्राप्त कर लोगो की आस्था का केंद्र बन पूजनीय बन गए। इनकी ख्याति दूर–दूर तक फैल गई और आज लाखों श्रद्धालु इनकी पूजा अर्चना करने देश के कोने कोने से पहुँचते है। इस तरह जीण और हर्ष भाई–बहिन का निश्छल और अमर प्रेम एक आदर्श बनकर जन आस्था का केंद्र बन गया। हर्ष और जीण से संबंधित लोक गीत शेखावाटी आंचल में आज भी लोकप्रिय है। बहिन भाई के निश्छल प्रेम का परिचायक जीण हर्ष के लोकगीत जो समूचे राजस्थानी लोक साहित्य में अपनी भावप्रणवता व मार्मिकता में सर्वधा अप्रतिम है।

औरंगजेब को पर्चा

एक जनश्रुति के अनुसार देवी जीण माता ने सबसे बड़ा चमत्कार मुगल बादशाह

औरंगजेब की सेना को दिखाया था। औरंगजेब ने शेखावाटी के मंदिरों को तोड़ने के लिए एक विशाल सेना भेजी थी। यह सेना हर्ष पर्वत पर शिव व हर्षनाथ भैरव का मंदिर खंडित कर जीण मंदिर को खंडित करने आगे बढ़ी। कहते है पुजारियों के आर्त स्वर में माँ से विनय करने पर माँ जीण ने भँवरे (बड़ी मधुमखियाँ) छोड़ दिए, जिनके आक्रमण से औरंगजेब की शाही सेना लहूलुहान हो भाग खड़ी हुई। कहते है सेनापतियों की हालत बहुत गंभीर हो गई तब सेनापति ने हाथ जोड़ कर माँ जीण से क्षमा याचना कर माँ के मंदिर में अखंड दीप के लिए सवामण तेल प्रतिमाह दिल्ली से भेजने का वचन दिया। वह तेल कई वर्षो तक दिल्ली से आता रहा फिर दिल्ली के बजाय जयपुर से आने लगा। बाद में जयपुर महाराजा ने इस तेल को मासिक के बजाय वर्ष में दो बार नवरात्रों के समय भिजवाना आरम्भ कर दिया और महाराजा मान सिंह के समय उनके गृहमंत्री राजा हरीसिंह अचरोल ने बाद में तेल के स्थान पर नगद 20 रु. 3 आने प्रतिमाह कर दिए। जो निरंतर प्राप्त होते रहे। औरंगजेब को चमत्कार दिखाने के बाद जीण माता 'भौरों की देवी' भी कही जाने लगी। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार औरंगजेब को कुष्ठ रोग हो गया था अतः उसने कुष्ठ निवारण हो जाने पर माँ जीण के मंदिर में एक स्वर्ण छत्र चढाया था। शेखावाटी के मंदिरों को खंडित करने के लिए आई मुगल सेना ने खाटू श्याम, हर्षनाथ, खंडेला के मंदिर आदि खंडित किए। एक कवि ने इस पर यह दोहा रचा–

देवी सजगी डूंगरा, भैरव भाखर माय।
खाटू हालो श्यामजी, पड्यो दड़ा–दड़ खाय।।

कछवाह राजवंश की शाखा शेखावत वंश के राजपूत कुलदेवी जमवाय माता होने के बावजूद जीणमाता की कुलदेवी के तौर पर आराधना करते है। मंदिर के मुख्य पुजारी सांसरिया गोत्र के चौहान है।

इस स्थल पर पहुँचने के लिए सीकर–जयपुर रेल व सड़क मार्ग पर स्थित गोरियां से पक्की सड़क बनी है। रेल से आने वाले यात्री गोरियां स्टेशन व बस से आने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग पर गोरियां उतर कर स्थानीय यातायात के साधनों के माध्यम से जीणमाता पहुँच सकते है।

राजस्थान के शेखावाटी आँचल में धार्मिक सहिष्णुता, स्त्री रक्षा के प्रतीक, शेखावाटी और शेखावत वंश के प्रवर्तक वीरवर राव शेखाजी की वंश परम्परा में भगतपुरा गांव के ठाकुर दीपसिंह जी के घर 01 अगस्त 1965 को जन्में रतन सिंह शेखावत हिन्दी ब्लॉग जगत (सोशियल मीडिया) में एक जाना पहचाना नाम है। श्री कल्याण कालेज सीकर से वाणिज्य स्नातक शेखावत पिछले कई वर्षों से ज्ञान दर्पण.कॉम वेबसाइट व विभिन्न राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में राजपूत इतिहास, संस्कृति, राजनीति आदि विषयों पर लिखने के साथ ही विभिन्न क्षत्रिय विचारकों की लेखनी इन्टरनेट के माध्यम से वर्तमान युवा पीढ़ी तक पहुँचाने के पुनीत कार्य में लगे है।

शेखावत वर्ष 2011 में हिंदी भवन दिल्ली में आयोजित एक कार्यक्रम में उतराखंड के तत्कालीन मुख्यमंत्री रमेश निशंक पोखरीवाल के हाथों व जयपुर के रविंद्र रंगमंच पर आयोजित एक कार्यक्रम में केन्द्रीय मंत्री व पूर्व सेनाध्यक्ष जनरल वी.के.सिंह के हाथों ''श्री कल्याणसिंह कालवी समाज गौरव सम्मान 2012'' से सम्मानित हो चुके हैं।

ललित शर्मा
रायपुर, छत्तीसगढ़

(बुक पोस्ट–मुद्रित सामग्री)

डाक विभाग से अनुरोध
वापसी के लिए इस पते का प्रयोग करें

ज्ञान दर्पण

एफ–37,एफ–2 मंगलम सिटी
कालवाड़ रोड़, जयपुर 302012